THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_178952

UNIVERSAL
LIBRARY

आकाशके तारे : धरतीके फूल

भारतीय ज्ञानपीठ • काशी

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83·1/M67Ak Accession No. GH.1590

Author मिश्र, कन्हैयालाल

Title आकाश के तारे, धरती के फूल

This book should be returned on or before the date last marked below.

भारतीय लोकोदय ग्रन्थमाला, हिन्दी ग्रन्थाङ्क--२०

आकाशके तारे : धरतीके फूल

लेखक
कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

संपादक
'नयाजीवन' और 'विकास'

भारतीय ज्ञानपीठ • काशी

ज्ञानपीठ-लोकोदय-ग्रंथमाला-संपादक और नियामक
श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन एम० ए०, डालमियानगर

प्रकाशक
अयोध्याप्रसाद गोयलीय
मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस

प्रथम संस्करण
अगस्त १९५२
मूल्य दो रुपये

मुद्रक
जे. के. शर्मा
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

और किसे ?

स्वर्गमें सुना है देवता रहते हैं और जन्नत में फरिश्ते, पर मैं तो मनुष्य को ही देवता और फरिश्ता मानकर जीता रहा।

मनुष्यकी सेवा मेरा धर्म, मनुष्यका प्यार मेरी खुशी, मनुष्यमें देवत्वकी दीप्तिका दर्शन मेरा साहित्य और संक्षेपमें मनुष्यता ही मेरा मिशन रहा।

मेरे साधनहीन जीवनकी सबसे बड़ी सम्पदा मनुष्यके प्रति अखण्ड निष्ठा रही और यही मेरी शक्ति भी !

मनुष्यका चोगा पहने दोजख के कीड़े भी मुझे मिले और मरघटोंके भूत भी। शिकायतकी कोई बात नहीं, उन्होंने मुझे नोचा-खसोटा भी और कभी-कभी तो ऐसा भी हुआ कि यह नोच-खसोट इस सीमा तक गई कि मनुष्यके प्रति मेरी निष्ठाकी बेल ही मुझे सूखती दिखाई दी।

जीवनकी इन ज्वालामुखी घड़ियोंमें, पिछले वर्षोंमें मुझे मेरे सहृदय और निष्काम बन्धु श्री साहू शान्तिप्रसाद जैन और उनकी पत्नी श्रीमती रमारानीजीके स्मरण-सम्पर्कने सदा ही वह मधुर मरमता दी कि निष्ठाकी वह सूखती बेल लहलहा उठी।

इस स्थितिमें मैं अपने ये तारे और फूल और किसे समर्पित करूँ, क्योंकि इनमें मेरी मानव-निष्ठाके उच्छ्वास और निःश्वास ही तो हैं ?

क० ला० प्रभाकर

कहाँ क्या है ?

कहानियोंकी कहानी	७	२२. कम्पा और चम्पा	५०
१. नन्दन	११	२३. तृप्ति और अतृप्ति	५३
२. झोंपड़ी	१४	२४. सुराही और प्रतिमा	५५
३. कवि की पत्नी	१६	२५. उनकी वाणी	५७
४. सती	१८	२६. उदार	५८
५. पहचान	२०	२७. एक प्रश्न	६१
६. आकाशवाणी	२१	२८. मृत्यु की चिन्तामें	६३
७. कलाकारका स्वप्न	२२	२९. शास्त्रीजी	६४
८. हिदायत	२५	३०. डाकू और फौजी	६५
९. टहनियाँ	२६	३१. शृंगार	६७
१०. ससारकी साक्षी	२७	३२. चूहड़	६८
११. असफलता	२९	३३. नन्दा	७०
१२. मध्यस्थ	३२	३४. दो घोड़े	७१
१३. और तू !	३३	३५. रसोइयाजी	७३
१४. तीन गुच्छियाँ	३४	३६. कमला	७५
१५. पेडकी पीड़ा	३६	३७. जीवनका ज्ञान	७६
१६. अनुभव	३९	३८. सुखनन्दन माली	७७
१७. ग़नीमत हुई	४०	३९. मै जान गया	७९
१८. प्रश्नोत्तर	४२	४०. भिखारी	८०
१९. लाल बिजार	४४	४१. क, कि, की,	८३
२०. योजना	४६	४२. दो साधक	८४
२१. पुरस्कार और दान	४८	४३. वे दोनों	८६

४४. दो मेमने ८७
४५. आरम्भ ८८
४६. भोजन या शत्रु ! ८९
४७. पेंसिल स्कैच ९१
४८. झरना हँसा ९३
४९. दो बहनें ९४
५०. धन्नू भगत ९५
५१. छोटे वृक्ष ९७
५२. क्यों रो रहे हो ? ९८
५३. दिनचर्या १००
५४. लारी और बैलगाड़ी १०२
५५. मनुष्य १०३
५६. आदत १०४
५७. बन्दूक १०५
५८. वृद्ध और युवक १०५
५९. रण-दुन्दुभि १०६
६०. सामने और पीछे १०६
६१. उन्नति १०७
६२. इंजीनियरकी कोठी ११०
६३. दो मित्र ११०
६४. रामनाम सत्य है ११२
६५. मेरा घर ११३
६६. मैं सोचता हूँ ११४
६७. रजकण ११६
६८. दियासलाई ११७
६९. भला क्यों ? ११८
७०. काँचका जोहरी ११९

कहानियोंकी कहानी

ये छोटी कहानियाँ हैं और इनकी भी एक कहानी है, जो आज पहले-पहल आपसे कह रहा हूँ।

१९२८ मे किसी मासिक पत्रिकामे छपा एक लेख पढ रहा था कि एक उद्धरण आया—'सम्पूर्ण जीवनका सम्पूर्ण चित्र उपन्यास है और एक घटनाका सम्पूर्ण चित्र कहानी।' यह शायद कार्लाइलकी राय थी। पढ़ना बन्दकर मै सोचने लगा, तो एक प्रश्न मुझमे भर गया—'जीवनकी यह एक घटना तो छोटी-से-छोटी भी हो सकती है, तो फिर कहानीके विस्तार-की छोटी-से-छोटी सीमा क्या है?'

यह प्रश्न मुझमे भर गया तो भरा ही रहा और १९२९ का वह समय आया, जब महाप्राण बापू देशके दौरेको निकले और मै चन्देको चला अपनी जन्मभूमिमें। एक दिन एक धनपतिसे इस बारेमे बातचीत हुई, तो मै प्रेरणा पा गया और मैने अपने भीतर भरे उस प्रश्नके समाधानमें यह प्रयोग किया—

सेठजी

"महात्मा गान्धी आरहे है, उनकी 'पर्स' के लिए कुछ आप भी दीजिये सेठजी!"

"बाबूजी, आपके पीछे हरसमय खुफिया लगी रहती है, कोई हमारी रिपोर्ट कर देगा, इसलिए हम इस झगड़ेमे नही पड़ते!"

"मै रातदिन चन्दा माग रहा हूँ, जब मुझे ही पुलिस न पी गई, तो रिपोर्ट आपका क्या कर लेगी?"

ज़रा सोचकर हाथ जोड़ते हुए-से बोले—"अजी, आपकी बात और

है। हम कलक्टर साहबसे डरते है। आपकी बात और है। आपसे तो उल्टा कलक्टर ही डरता है।"

प्रसन्नतासे मैंने कहा--"तो आप ही डरनेवालोंमें क्यों रहते है ? कांग्रेसमें नाम लिखा लीजिये, फिर कलक्टर आपसे भी डरने लगेगा।"

मेठजीने दाँत निकालकर जो मुद्रा बनाई, उसकी ध्वनि थी--"हें, हें, हें !"

इसे लिखकर मुझे लगा कि कुछ मेरे हाथ लग गया है और इसी उत्साहमे मैंने इस तरहकी १०-१५ चीजें लिखीं। इनमें 'सलाम' का खूब प्रचार हुआ; जो इस प्रकार है--

सलाम

सर विलियम पहली बार हिन्दुस्तान आये। एक दिन कुलीने गाड़ीसे उतारकर उनका सामान वेटिंग रूममें रक्खा। अब उसकी हथेलीपर एक रुपया था।

उसने कहा--"हुजूर कम है !"

सर विलियम कुछ नही समझे। उन्होंने अपनी भाषामें कहा--"क्या कहते हो ?" कुली कुछ नही समझा। फिर भी उसने दोहराया--"हुजूर, कम है !"

पास ही एक काला ईसाई बैठा था। उसने कुलीके हाथसे वह रुपया उठा लिया और चवन्नी उसके सामने फेंककर कहा--"सूअर !"

कुलीने चवन्नी उठाई और माथेपर हाथ लगाया--'सलाम हुजूर !'

सर विलियम सब कुछ समझकर बोले--"ओह, इण्डिया दी स्लेव कण्ट्री !" (हिन्दुस्तान एक गुलाम मुल्क !)

काला साहब रुपया लौटाते हुए बोला--"यस सर, यस सर !"

सलामकी सलामतीका नतीजा यह हुआ कि अब इनकी संख्या २०के लगभग हो गई।

साहित्यिक मित्रोंमें सबसे पहले अज्ञेयने इन्हें पूरी तरह सराहा। कहा कि यह हिन्दीकी छोटी कहानी है और कहानीके इतिहासमें इसे तुम्हारी नई देन माना जायेगा, पर रघुकुल तिलकने इन्हें कहानी माननेसे इंकार करते हुए कहा—यह स्कैच लिखनेकी कलामें एक नया प्रयोग है—निश्चय ही बहुत सुन्दर !

१९३५ में प्रेमचन्दजीको मैंने दोनों मत बताये और उनकी राय पूछी। स्वयं पढ़कर बोले—"शाबाश, यह एक नई कलम है, गद्यकाव्य और कहानीके बीच एक नई पौध, जिसमें गद्यकाव्यका चित्र और कहानीका चरित्र है। खूब लिखो। जब इनका संग्रह छपे, तो याद दिलाना मैं भूमिका लिखूंगा !"

अब मैं निश्चिन्त हो गया और जब-तब लिखता रहा। इस सम्बन्धमें इतनी स्पष्टता मुझमें है कि यह जो कुछ भी हों, मैं इस स्थितिमें नहीं हूँ कि गर्व कर सकूँ; क्योंकि मैंने इनके लिए कोई श्रम नहीं किया। किसीको राह चलते कुछ मिल जाये तो, यह एक चांस ही तो हुआ !

गोयलीयजीके तानों, तक़ाज़ों और घुड़कियोंके बल पर अब जो इनके प्रेस देखनेकी घड़ी आई, तो मैंने झाड़-पछोड की, जिसमें कुछ मँज गई और कुछ छँट गई।

बस इन कहानियोंकी यही कहानी है, जो आज पहले-पहल आपसे कह रहा हूँ।

विकास लिमिटेड
सहारनपुर

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

नन्दन

[१]

नन्दन अपने गाँवका सबसे बड़ा धनी था। सारे गाँवमे उसकी ऊँची हवेली दूरसे दिखाई देती थी। आस-पास चारो ओर उसका नाम फैला हुआ था।

उस दिन खबर उड़ी कि आज सन्ध्याके समय गाँवमे डाका पड़ेगा और खबर क्या उड़ी, गर्वोन्मत्त डाकू-सरदारने खुद ही यह खबर भेजी थी। गाँवमे और तो सब गरीब थे, डाकू भला उनका क्या लेते—क्या बिगाडते। उनके लिए तो गरीबी आज कवच थी। वे पूरी तरह विश्वस्त थे कि डाकेका नोटिस नन्दनके नाम ही है।

नन्दन भी यह बात जानता था। वह उस दिन, दिन भर अपनी हवेलीके किवाड़ बन्द किये भीतर घुसा रहा। कैसे वह डाकुओंसे अपने माल, मान और प्राणकी रक्षा करे, यही उसकी चिन्ता थी।

उसने जेवर और धन अपनी हवेलीके पीछेवाले उपवनमे जगह-जगह बखेर दिया। मोतियोंका हार नेवलेके बिल मे रक्खा, तो सोनेकी बोरी कुएँमे डाल दी। गिन्नियाँ खादके गड्ढेमे दबाई, तो रुपयोंकी थैलियाँ बूढे बड़की खोखरमें भर दी। यही उसने दूसरे कीमती सामानका किया।

उसकी हवेलीके पिछले हिस्सेमे एक बडा-सा गड्ढा था। उसमें वह स्वय बैठा और अपने ऊपर उसने एक टूटा-सा टोकरा ढाँक लिया। सन्ध्या होते ही हवेलीका द्वार उसने खुलवा दिया और एक भी कमरा ऐसा न छोड़ा जिसका द्वार बन्द हो या जिसमे कुछ भी व्यवस्थित हो। उसे उस गड्ढेमें बैठे, टोकरीकी झिरखियोसे सारी हवेली दिखाई दे रही थी।

दलबल सहित रातमें डाकू आये, तो वे सीधे नन्दनकी हवेलीपर

पहुँचे। उन्हें विश्वास था कि वहाँ एक पूरे युद्धकी तैयारी होगी, पर यहाँ तो द्वार खुले हुए थे। चौकते-सम्भलते वे भीतर घुसे, पर हवेली तो बिखरी-सी पड़ी थी।

'भाग गया शैतान और सारी दौलत भी साथ ही ले गया।' डाकुओंके सरदारने कहा और वे सब हाथ मलते लौट गये। नन्दनका दिल पहले तो धड़कता रहा, पर अब वह मुस्करा रहा था।

[२]

दूसरे दिन गाँवके बड़े-बूढ़ोंने नन्दनके धैर्य और बुद्धिमत्ताकी प्रशंसा की, पर कई दिन बाद भी उन्होंने नन्दनको उसी गड्ढेमें अपनेको ढँके बैठे देखा, तो उन्हें आश्चर्य हुआ।

उन्होंने उसे समझाया कि अब कोई खतरा नहीं है। अपने घरको फिरसे व्यवस्थित करो, अपनी सम्पदाको सुन्दर आलमारियोंमें सजाओ और स्वयं भी अपने सुखद पर्यंक पर सोना आरम्भ करो।

नन्दन सबकी सुनता है, सिर हिलाता है, पर मानता नहीं। कहता है—जिस पद्धतिने मेरे प्राण बचाये, धन-सम्पदाकी रक्षा की, उसका त्याग भला मैं कैसे कर सकता हूँ?

सब उसे समझाते हैं कि वह संकट कालकी नीति थी। उस समय उसका व्यवहार करनेके लिए हम तुम्हारी प्रशंसा करते है, पर आज तो उसका पालन एक विडम्बना है। कल जो सुरूप था, आज वह कुरूप है। जब वह परिस्थिति ही नहीं, तो वह नीतिपद्धति कैसे ठीक रहेगी? उसे छोड़ो और अपना स्वस्थ रूप ग्रहण करो।

नन्दन बहसें करता है और एक-से एक बढ़कर तर्क खड़ा करके उस पद्धतिका समर्थन करता है।

सब देखते है कि उसकी सुन्दर हवेली सूनी और उजड़ी पड़ी है और उसकी धन-सम्पदा भी खोखरों-गड्ढोंमें बिखरी है। बात-चीतसे अनुमान

होता है कि अब वह यह भी भूलने लगा है कि कौन चीज किस खोखर या गड्ढेमे है, पर वह सन्तुष्ट है और स्वय उस टोकरेसे ढँके गड्ढेको ही अपना शयन-कक्ष बनाये हुए है।

श्रद्धामे डूबकर वह उन खोखरो-गड्ढोको पुकारता है रीति-प्रीति और उस बडे गड्ढेको कहता है—जन्म-कूप !

सब देखते है कि उसकी सुन्दर हवेली सूनी उजड़ी पडी है, उसकी धन-सम्पदा उन गडढों-खड्ढोमें बिखरी है और वह स्वय भी उस टोकरेसे ढँके गड्ढेको ही अपना शयनकक्ष बनाये हुए है।

झोंपड़ी

रावकी अट्टालिकाके पास ही खड़ी थी रंककी झोंपड़ी। अट्टालिका आकाशसे इतरा-इठलाकर बातें करती; उसे अपनी विशालताका गर्व, तो उच्चताका दर्प !

झोपड़ी पृथ्वीकी गोदमें सिमटी-दबी-सी, अपना अस्तित्व बचाए, जीवनके दिन बिताती; उसे अपनी लघुताका बोध, तो अशक्तिका भान !

अट्टालिका कभी झोपड़ीकी ओर देखती, तो उसकी मुद्रामे झलकता लघुताका परिहास और झोंपड़ी कभी अट्टालिकाकी ओर सिर उठाती, तो उस पर स्वयं ही छा जाता, हीनता का आभास !

उस दिन प्रभातमें ही अचानक आकाशसे उठा तूफान। पहले ही झाँपड़में झोपड़ीके पाखे और छप्पर धरती पर आ-गिरे !

अट्टालिका ज्यों-की-त्यो खड़ी थी।

उसने झोंपड़ीका यह रूप देखा, तो कुछ उभर-सी उठी।

हँसी उसके ओठोंपर क्या बिखरी, रोम-रोमसे फूट चली। झोंपड़ी पड़ी कराह रही थी। यह हँसी उसने सुनी, तो कसक उठी, पर उसका कण्ठ स्वरहीन ही रहा।

सन्ध्याको रंक बाहरसे आया, तो आये कुछ और भी रंक और तब हाथों-हाथ खड़े हुए पाखे और उठ-टिका छप्पर। अब झोंपड़ी फिर ज्योंकी त्यों खड़ी थी।

***

उस दिन प्रभातमें ही धरतीसे उठा अचानक भूकम्प। पहले ही धक्केमें अट्टालिकाकी दीवारें खिल गई, दूसरेमें डाटें चटकी और तीसरेमें

छते धरतीकी छाती पर इस तरह छितरा गई कि जैसे ईट-रोड़ोके अतिरिक्त वे कभी और कुछ थी ही नही !

राव आया, इधर-उधर घूमा। इजीनियर आये, इधर-उधर घूमे, पर अट्टालिका जो औन्धेमुँह गिरी-सो-गिरी !

वह अब मलवेका ढेर थी, मलवेका ढेर ही रही।

झोंपड़ी फिर ज्यों-की-त्यो खड़ी थी। उसने अट्टालिकाका यह रूप देखा, तो वह सिहर उठी, पर उसका कण्ठ स्वरहीन ही रहा !

कविकी पत्नी

कवि कुसुमका अभी हालमे विवाह हुआ था। पत्नी गॉवकी थी और अपढ़, पर रूप उसपर बरस पड़ा था। कवि उसमे लीन था—उसकी ग्रामीणता और अपढ़ताकी ओर ध्यान देनेका समय अभी उसे न था। आज रूपकी लहरोंमें तैरकर उसने एक मदभरा गीत लिखा था और वही आज उसने नगरके दीपोत्सवमे पढ़ा था। निर्णायकोने उसे सर्वश्रेष्ठ ठहराया और प्रतिस्पर्द्धाका विशाल कप उसे भेट किया।

उत्साहमें भरा कवि घर आया और चमत्कार-सा वह कप पत्नी के सामने रख दिया। पत्नी खिल उठी। उसका अन्तर उसके प्रश्नमें मुखरित हो उठा—"कहाँसे लाये हो यह ? बड़ा सुन्दर है।"

कविका मुख दीप्त हो उठा—"जीतकर लाया हूँ इसे !"

पत्नी शोक-सागरमें डूब गई। उसके मनकी व्यथा उसकी वाणीमे फूट पड़ी—"तब तो किसी दिन तुम मेरा जेवर भी डुबा दोगे।"

"क्यो ?" कविने विस्मयसे पूछा

"और क्या ? आज जीतकर यह खेल लाये हो, कल मेरा जेवर दाव पर रक्खोगे। आज जीत है तो कल हार है।"

उसकी भ्रुकुटियोंमे क्रोध और आँखोंमे आँसू भर आये।

"मै जुएमे जीतकर यह नही लाया पगली !"

उत्सुक हो, वह पूछ बैठी—"फिर और कहाँसे जीतकर लाये हो ?"

(कविताका अर्थ पत्नी समझ नही सकती)

"कुश्तीमें जीतकर लाया हूँ", कविने कहा।

"ऐ ! कुश्तीमें !!" उसने पतिके सूखे हाथ और पतले पैर देखे और पूछा—"अच्छा, तुम कुश्ती भी लड़ते हो ?"

"हाँ, खास तरहकी कुश्ती लड़ता हूँ।"

पत्नी फिर विषादकी मुद्रामे स्थिर हो गई।

कविने कहा—"क्यों अब क्या हुआ ?"

"हुआ क्या; तुम मुझे खोओगे किसी दिन।"

"क्यो ? कुश्तीमे तो जेवर नही जाते !"

"जेवर नही जाते, तो क्या, हाथ-पैर तो टूटते है।"

"न मै जुआ खेलता हूँ, न कुश्ती लड़ता हूँ। यह सब तो मै तुमसे हँसीमे कह रहा था रानी !"

"फिर यह कहाँसे जीतकर लाये हो ?"

(कविताका अर्थ पत्नी समझ नही सकती)

"मै गाने लिखता हूँ और लोगोको गाकर सुनाता हूँ। वे मुझे इस तरहके इनाम देते है।"

"खैर, गाने जोड़नेमे तो कोई हर्ज नही। हमारे गाँवमे भी बसी झीवर चौबोले जोड़ता है। होलियोमे लोग उसे सिर पर उठाये फिरते है। तुम भी चौबोले जोड़ते होगे ?"

"हूँ !!" एक मरी-सी ध्वनिमे कविने कहा और पत्नीकी ओर देखा। पत्नीकी आँखोमे गर्वकी प्रसन्नता फूट रही थी। पतिकी आँखोंमें आँखें डालकर उसने कहा—"अबकी होलियोमे तुम हमारे गाँवमें चलना। रातको चौपालपर एक चौबोला तुम कहना, एक बंसी कहेगा। सच कहती हूँ, बड़ा मजा रहेगा।"

सती

दामोदर और झम्मो पति-पत्नी थे। नई-नई उमंगोंसे उभरा दिल लिये उन्होंने अभी-अभी घरकी दुनियामें प्रवेश किया था।

अचानक दामोदरको एक दिन हैज़ा हो गया। अपनी अन्तिम घड़ियोंमें उसने झम्मोसे कहा—"यह दस बीघे ज़मीन है, सारी उम्र तुम्हें रोटियाँ देगी। मैं तुम्हें कोई सुख न दे सका। भगवान् करें, अगले जन्ममें भी तुम मुझे मिलो।"

झम्मोने पूरी दृढ़तासे दामोदरकी ओर देखकर कहा—"अगले जन्मकी इसमें क्या बात है। मैं तुम्हारे साथ जो चल रही हूँ।"

दामोदर मर गया। झम्मो सती हो गई। दस बीघे ज़मीन उसने प्याऊ और मन्दिरके लिए दान कर दी।

× × ×

गाँववालोंने दोनोंकी अस्थियाँ चुन, एक सती-स्तूप बना दिया। उसके पास ही उग आया एक पीपलका छोटा-सा पेड़।

सतीने कहा—"दामोदर, तुम अपने इस नये रूपमें कितने सुन्दर लग रहे हो?"

पीपलने अपनी कोंपल बढ़ाकर सतीका स्तूप छू दिया। यह नये जीवनका प्रथम प्यार था।

यों ही सौ साल बीत गये।

× × ×

एक दिन आन्धीमें पीपल गिर गया। सती अब भी ज्यों-की-त्यों खड़ी थी, पीपल उरला पड़ा था। लम्बे-लम्बे साँसोंमें उसने कहा—"आज तुम

फिर इकली रह गई झम्मो ! हाय, कितने आरामसे रह रहे थे हम लोग !"

दो बड़े-बड़े आँसुओंमें सतीने कहा—"मैं अब क्या करूँ दामोदर, तब अपने हाथ पैरोपर अपना अधिकार था और अब समयका है।"

सतीकी कुछ ईंटे खिसककर नीचे आ गिरी। यह दोनोकी यात्राके अन्तरका माप था ?

पहचान

"मै अपना काम ठीक-ठीक करूंगा और उसका पूरा-पूरा फल पाऊँगा !"

यह एकने कहा ।

"मै अपना काम ठीक-ठीक करूंगा और निश्चय ही भगवान् उसका पूरा फल मुझे देगे !"

यह दूसरेने कहा ।

"मै अपना काम ठीक करूंगा । फलके बारेमे सोचना मेरा काम नही ।"

यह तीसरेने कहा ।

"मै काम-काज और फल; दोनोंके झमेलेमे नही पड़ता, जो होता है सब ठीक है, जो होगा सब ठीक है ।"

यह चौथेने कहा ।

आकाश सबकी सुन रहा था ।

उसने कहा—"पहला गृहस्थ है, दूसरा भक्त है, तीसरा ज्ञानी है, पर चौथा परमहंस है या अहदी; यह मै नही कह सकता !"

आकाशवाणी

वृद्धकी चाह थी कि बेटा तर्क न कर, उसके इंगित किये पथपर चले, पर बेटेका पथ अपने हृदयकी आकांक्षाओंकी ओर था। हर बातपर दोनोंमें मतभेद रहता। अपनी-अपनी रायमें दोनों ही सही थे!

एक दिन अपनी जरा-विकम्पित गर्दनको प्रयत्नपूर्वक रोकते हुए बूढ़ेने कहा—"मूर्ख, मुझे उपदेश करता है। जुमा-जुमा आठ दिन, कल ही तो तू पैदा हुआ था! तब मैं तुझे अपनी गोदमें न लेता, तो मासके एक लोथड़ेकी तरह गीध तुझसे अपना त्योहार मना लेते!"

प्राचीनताके प्रति भीतर उमड़ी अवज्ञाकी बाढ़को प्रयत्न पूर्वक रोकते हुए युवाने कहा—"मैं नहीं चाहता कि तुम्हारी घिसी हुई अक्लके भरोसे-पर चलूं। मुझमें उमंग है, साहस है, मैं अपना पथ स्वयं निर्माण करूँगा!"

आकाश दोनोंकी बातें सुन रहा था। उसने अठखेलियाँ करती अपनी तारिकाओंसे कहा—"एकके पास अनुभव है और दूसरेके पास उत्साह, पर दोनों ही भटक गये हैं। बूढ़ेकी आँखोंमें 'कल'की कला है, पर 'आज'-की शक्तिका अनुभव उसे नही हो पाता और युवा देखता है, केवल 'आज'-की ऊँची अट्टालिका, पर उसकी नींव रखनेमें 'कल'ने जो श्रम किया था, उधर उसकी नज़र नही जाती!"

बूढ़ा और युवक एक दूसरेको घूर रहे थे। आकाशकी बातें क्या उन्होंने सुनी?

कलाकारका स्वप्न

कलाकारके मनमें एक स्वप्न था कि वह एक आदर्श मूर्तिका निर्माण करे। अपनी इसी धुनमें वह रात दिन लगा रहता और एकके बाद दूसरा प्रयास करता रहता। इन प्रयासोंमें उसकी कलाकी प्रगति प्रत्यक्ष थी, पर उसकी प्यास उससे न बुझी। उसके मनमें एक स्वप्न था कि वह एक आदर्श मूर्तिका निर्माण करे। उसका आदर्श इन प्रयासोंसे अभी बहुत दूर था। उसने अपने ही हाथों उन प्रयासोको तोड, मिट्टीमे मिट्टी मिला दिया।

एक दिन यों ही दर्पणमे उसने अपना मुँह देखा तो उसकी दाढीके कुछ बाल सफेद हो चले थे। वह चौक पड़ा। उसने सोचा—ओह, प्रयासोंमें ही यह यौवन बीत चला और मेरे आदर्शकी अभी झीनी झाँकी भी नही सजी !

कुछ क्षण वह स्तब्धतामें डूबा रहा और तब भड़भड़ाकर वह उठा। भीतर ही भीतर अँकुराया कोई राग गुनगुनाते हुए उसने अपने कमरेमें जल्दी-जल्दी और धीरे-धीरे कई चक्कर काटे। उसके पैरोंमें नृत्यका उल्लास था, मस्तिष्कमें सागरकी लहरें। सहसा वह ठहर गया और कुछ सोचता रहा। उसकी देह तन गई और बच्चोंकी तरह उसने दोनो चुटकियाँ एक साथ बजाई। एक नई मूर्तिका निर्माण आरम्भ हुआ।

प्रभात और सन्ध्या, दिन और रात, मास और वर्ष, आये और चले गये, पर कलाकारको कलेण्डर देखनेका जैसे अवकाश ही न था। वह जीवित था, पर इस संसारमें न था।

पूरे पाँच वर्ष बाद एक दिन वह उठा। एक मूर्ति उसके सामने थी। उसने घूर-घूरकर उसे देखा, परखा। उसमें कही कोई दोष न था।

उसने उसपर दोषोंके आरोपका प्रयत्न किया, पर उसे सफलता न मिली। अपनी इस असफलतापर वह फूल उठा।

अब उसके जीवनका आदर्श उसके सामने था! वह उल्लासकी लहरोंमें तैर चला, पर संशयका एक काँटा अभी उसके मनमे चुभ रहा था—'जाने विश्वके पारखी मेरी इस जीवन-साधनाका क्या मूल्य आँकेंगे?'

झिझके-झिझकते उसने कुछ समझदार मित्रोंको अपनी कलाकृति दिखाई। वे सन्तुष्ट हुए और निर्णय हो गया कि कल इसे विश्वकी कला-प्रदर्शनीमे रक्खा जाय।

कलाकारने सोचा, कल मेरे जीवनका सबसे महान दिन होगा। रातमें भी उसे कला-प्रदर्शनीके ही स्वप्न दीखते रहे।

[२]

प्रभातकी किरणें फूटी, कलाकार जागा और उड़ा-उड़ा अपने कला-कुटीरमे गया। उसने वहाँ जो देखा, वह अविश्वसनीय था। उसने आँखें मली, बार-बार देखा, पर दृश्यमें अन्तर न आया।

किसीने रातमे उस मूर्तिके टुकड़े कर दिये थे। धरतीपर मिट्टीके नही, कलाकारके कलेजेके ही टुकड़े बिखरे पड़े थे। घटनाको हुए युग बीत गया, पर वे टुकड़े फिर एकत्रित न हुए। कलाकुटीरमें आज भी वे ज्यों के त्यों बिखरे पड़े है और कलाकार वही बैठा उन्हें प्रायः देखा करता है।

पड़ौसी उसे झक्की कहते है और बच्चे पागल। कभी-कभी कोई पुराना साथी आता है, तो समवेदनासे कह उठता है—"कलाकार, फिर एक बार प्रयत्न करो और नई मूर्ति बनाओ!"

कलाकार उस साथीकी ओर बस सूनी आँखों देखा करता है, बोलता कुछ नहीं।

शैतान लड़के जो अक्सर उसे झरोखोंसे झाँका करते हैं, कहते हैं

कि साथीके जानेपर कलाकार आप ही आप बड़बड़ाया करता है---नई मूर्ति ! .....हुँ:.....और नई मूर्ति बनाओ !

कभी-कभी ज़ोरसे जैसे वह अपने साथीसे कह रहा हो, पुकार उठता है---है तो यह मूर्ति; फिर और नई मूर्ति क्यों बनाऊँ ?

और बस फिर धरती पर पड़े उन टुकडोंकी ओर देखने लगता है। ये टुकड़े ही अब शायद उसका स्वप्न है !

हिदायत

"मै अपना जीवन बितानेके लिए संसारमें जा रहा हूँ मेरे प्रभु ! मुझे कोई हिदायत दीजिये, जिससे मै वहाँ सफलता पा सकूँ !" मनुष्यने ईश्वरसे कहा ।

ईश्वरने प्रसन्न होकर कहा—"मेरे बेटे, मै तुम्हें जीवनकी दो विभूतियाँ दे रहा हूँ । संसारमें एकको अक़्ल और दूसरीको ईमान कहते हैं । मेरी हिदायत है कि अक़्लको हमेशा खूब खर्च करना और ईमानको हमेशा महफ़ूज़ रखना ।"

मनुष्यने सिर झुकाया और दोनों हाथ आगे बढ़ा दिये । ईश्वरने उसके बाये हाथमे अक़्ल और दायेंपर ईमान रख दिया कि वह अपनी राह चला । भूल मनुष्यका स्वभाव है; यहाँ भी वह भूल गया कि उसने अक़्लकी जेबमें ईमान और ईमानकी जेबमें अक़्ल रख ली ।

ससारमें अब वह दोनों हाथ ईमान लुटा रहा है और अक़्लको उँगली नही लगाता । उसे अपने ईश्वरकी हिदायत याद है कि अक़्ल हमेशा खूब खर्च करने और ईमान महफ़ूज़ रखनेकी चीज़ है ।

टहनियाँ

हरे-भरे कोमल पत्तों और सुन्दर सुमनोंके गुच्छोंसे लदी टहनियोंने तनेसे कहा—"हम कितनी सुन्दर है ?"

प्रश्नकी प्रतिक्रियाको भीतर ही पचाकर, संयत स्वरमे तनेने कहा—"हाँ, बेटी, तुम बहुत सुन्दर हो।"

सौन्दर्यका दर्प इससे तृप्त न हो पाया। वह अपनी महत्ताका स्वीकार तो चाहता ही है। दूसरेकी हीनता-स्वीकृति भी वह आवश्यक मानता है।

"और तुम कितने कुरूप हो जी ! काला भूत-सा रंग और खुरदरी खाल। छिः !"

प्रतिक्रिया कण्ठतक भर आई। फिर भी अपनेको यथासम्भव मसोसकर तनेने कहा—"हाँ बेटी, मुझमे सौन्दर्य नही है, पर जिस सौन्दर्यपर तुम इतरा रही हो, उसके आधार-रसका भण्डार भगवान्ने मुझे ही दिया है। मै उसकी जूठन तुम्हें न दूँ, तो तुम्हारा यह सौन्दर्य कुछ ही पलोंमें बिखर जाये !"

हवाके झोंकोंमें लिपटकर टहनियाँ आकाशकी ओर देखने लगी। फूलोंकी कुछ पंखड़ियाँ झरकर तनेके पास आ गिरी।

क्या टहनियाँ रो रही थी ?

संसारकी साक्षी

दीमकने महीनों मर-मरकर अपने लिए एक घर बनाया—वाशिंग-टनके विख्यात होटलकी ऊँची अट्टालिका-सी, जाने कितनी मंजिलोंकी बाम्बी और उसमें अपने नित बढ़ते परिवारके साथ रहने लगा—सुखसे, सुविधासे। उसमे सभीके लिए पृथक-पृथक स्थान था। विश्वके कलाकारोंकी अभिरुचिसे अछूती यह बाम्बी एक पूरा ससार था—प्यार और सुखकी कोमल भावनाओंसे भरपूर।

साँप बेघर था। वर्षामे वह भीगता, धूपमे जलता और धूलमें परेशान होता, एक दिन धीरेसे आकर वह बाम्बीमे बैठ गया। दीमकने अतिथि समझकर उसका स्वागत किया।

साँपने फुकारकर कहा—"क्षुद्र दीमक! मुझे तुम्हारी कृपाकी आवश्यकता नही है। मै अपने इस घरमे सुखसे रहना चाहता हूँ। तुम अब अपना रास्ता देखो!"

"तुम्हारा यह घर कहाँ है भाई, यह तो मेरा है। इसे बनाकर अभी तो मेरी थकान भी नही उतरी। मै इसे छोड़कर और कहाँ चला जाऊँ?"

साँपने अपनी दोनों जिह्वाएँ लपलपाईं और दीमकके कुछ सुकुमार शिशुओंको अपने पेटमें रख लिया।

"तुम जाओ जहन्नुममें! और न जाओ तो यही रहो। मै बहुत दिन तक अपने भोजनकी चिन्तासे निश्चिन्त रहूँगा। मुझे तुम्हारे यहाँ रहनेमें भी कोई आपत्ति नहीं है मेरे दोस्त!"

दो-तीन और शिशुओंको सटककर साँपने कहा—"ओह, बड़े ही स्वादिष्ट हैं ये बताशे तो!"

× × ×

बाम्बीके बाहर एक बुढ़िया अपने बच्चेसे कह रही थी—"जोड़ हाथ; नागदेवताकी बाम्बी है यह !"

शैतानियतसे मुस्कराकर साँपने दीमककी ओर देखा। दीमक दुःख और क्षोभसे अधमरा हो, बुढ़ियाकी ओर देख रहा था।

असफलता

सुधाकर मूर्तिकार था।

पच्चीस वर्षोंतक वह पहाड़ों, नदियों, खण्डहरों और जाने कहाँ-कहाँ अपनी कला-साधनाके लिए भटकता फिरा। सच तो यह है कि ऐसा कोई कष्ट न था, जो उसने नहीं भोगा, पर न कभी वह थका, न घबराया और यों एक दिन उसकी कला सिद्धिके द्वार आ लगी।

उसने एक पत्थर छाँटा और एक दिन उसपर पहली टाँकी लगाई। इसके बाद तो उसे याद ही न रहा कि कितने प्रभात आये, कितनी रातें बीतीं। वह लगा रहा—लीन रहा और जिस दिन उसने अपने हाथसे अपनी छेनी-हथौड़ी रक्खी उसके सामने एक मूर्ति थी।

उसके बाल सफ़ेद हो गये थे, कमर झुक गई थी, आँखें चुंधिया गई थीं। इस ठुक-ठुकमें जीवनके पच्चीस वर्ष और बीत गये थे!

राजा एक दिन उधरसे निकला और मूर्तिका मोल पूछने लगा। वह इसे अपने उपवनके फ़ौवारेपर रखना चाहता था।

"तुम्हें वेश्याओंमें रहते-रहते हर चीज़का मोल पूछनेकी आदत हो गई है राजन्!"

सुधाकरने घृणासे भरकर अपना मुँह फेर लिया।

राजा चला गया।

एक दिन नगरवासी एकत्र हो, उसके द्वार आये। वे सब सम्मिलित प्रयत्नसे उस मूर्तिके लिए मन्दिर बनानेको उत्सुक थे।

सुधाकरने कहा—"हाँ हाँ, लेलो, यह तुम्हारी ही तो है। बनाओ मंदिर, मैं भी जो बन पड़ेगा, उसमें मजूरी करूंगा।"

"और इसका मूल्य भैया ?" डरते-डरते उन्होंने पूछा।

"मेरी मूर्तिकी पूजा हो, यही मेरी पचास वर्षोंकी साधनाका मूल्य है, नागरिको !" उसने कहा।

मन्दिर हाथों-हाथ उठता गया और उसमें एक दिन उस मूर्तिकी प्रतिष्ठा की गई। सुधाकरका जीवन उस दिन धन्य हो गया। उसे उस दिन ऐसा लग रहा था कि मन्दिरमें मूर्तिकी नहीं, उसीकी प्रतिष्ठा हो गई है।

सुधाकर तीर्थ-यात्राको चला गया।

देश-प्रदेश विचरता वह एक वर्ष बाद लौटा, तो दौड़ा-दौड़ा मन्दिरमें गया। मूर्ति अपने स्थानपर विराजमान थी। धूप जल रही थी, प्रदीप प्रज्वलित थे, पूजा हो रही थी। भक्त प्रणत-वन्दनामें लीन थे। मूर्तिपर एक अद्‌भुत तेज छाया हुआ था।

सुधाकर मूर्तिकी ओर एक टक देखता रह गया। पता नहीं वह किस सीमातक चेतनामें था।

मूर्तिने कड़वी आँखोंसे सुधाकरकी ओर देखा और तभी उसके कानोंमें गूंज उठा यह तीखा प्रश्न—"क्या देख रहा है रे तू ?"

सुधाकर भूला-भूला, लाड़में डूबा-डूबा मूर्तिके पास आ रहा।

तभी गरजकर मूर्तिने कहा—"पापी ! न फूल, न अक्षत, न आरती, न पूजा; पत्थर-सा खड़ा क्या देख रहा है ?"

सुधाकर एक दम स्तब्ध, काटो तो खून नहीं।

फिर भी अपनेको पूरी शक्तिसे सम्भालकर एक बार उसने मूर्तिकी ओर देखा, पर तभी पड़ी उसके कानोंमें यह ललकार—"प्रणाम कर मूर्ख !"

सुधाकरने मुश्किलसे अपनेको समेटकर कहा—"जानती हो, तुम कौन हो ?"

मूर्तिने व्यंगसे हँसकर कहा—"मूर्ख, इतना भी नहीं जानता; मैं भगवान् हूँ !"

ठहरना अब असम्भव था। सुधाकर लौट पड़ा। सीढ़ियोंपर उतरते-उतरते उसने कहा--"हाँ, तू भगवान् है, पर ऐसा भगवान्, जो अपने निर्माताको भूल गया !"

और तब उसने एक लम्बी साँस लिया। इस साँस में उसने स्वयं ही सुना--"ओह, मैं तुम्हें पत्थरसे भगवान् तो बना पाया, पर हृदय न दे सका !"

मध्यस्थ

पुरुषने कहा—"मै शक्तिका अक्षय भण्डार हूँ।"

नारीने कहा—"मै सेवाकी अमल स्रोतस्विनी हूँ।"

पुरुषका अभिमान उमड़ आया। उसने कहा—"शक्तिका आश्रय ग्रहण किये बिना सेवाका अस्तित्व असम्भव है।"

नारीने नम्रतासे कहा—"यह ठीक है, पर यह भी तो ठीक है कि सेवाका सम्बल सम्भाले बिना शक्ति पैशाचिकताकी छाया है।"

वृक्षसे झरकर एक फूल दोनोके मध्यमें आ गिरा। उसने कहा—"मैने तुम्हारी बातें सुनी है और मै अपने जीवनके सन्देशसे तुम दोनोंमें उठे विवादको शान्त कर सकता हूँ।"

"क्या है वह सन्देश ?" दोनो पूछ उठे

"शक्तिके सौन्दर्य एवं सेवाकी सुरभिका संगम ही जीवनकी पूर्णता है।"

नर और नारी दोनों एक दूसरेके निकट हो आये।

और तू !

नाम तो उसके कई हैं, पर मैं उसे लाड़में आदम कहता हूँ।

आजकल उसकी दिनचर्या इस प्रकार है—

सुबहसे सोनेतक वह गंगाकी बहती धारमें खूंटे गाड़ता है। खूंटा रखता है और मूंगरी उठाता है कि उसे ठोके, पर खूंटा है कि बह चलता है।

कभी-कभी वह बायें हाथसे खूंटा पकड़े रहता है कि दायेंसे उसे ठोके। ठोकता है कि खूंटा नीचे उतर जाता है और वह खिल पड़ता है कि चलो एक तो ठुका—अब वह आगे बढ़े, पर तभी देखता है कि सामने ही कुछ दूरपर वह खूंटा उचक आया है और बहा जा रहा है।

यों ही दिन ढल जाता है, रात आ पड़ती है, आदम सो जाता है। आकाश मुस्कराता है, प्रभात फूटता है और आदम अपने खूंटे और मूंगरी लेकर अपनी जगह आ डटता है।

उसकी चाह है कि इस प्रवाहपर खूंटे थमें और वह अपना तम्बू उनके सहारे तानकर आरामसे उसमें सोये। सोये कि सोया ही रहे।

तटपर जाते जो भी उसे देखता है कि हँस पड़ता है और हँस पड़ता है कि आकाश उससे पूछता है—"और तू ?"

तीन गुच्छियाँ

"बोल, क्या लेगी इन तीनों गुच्छियोंका ?"

"तीन गुच्छियोंके तीन आने बहूजी; और क्या लूंगी कोई धेली रुपया!"

"दो आने ले, तो रख दे वहाँ तीनों गुच्छियाँ।"

"आप तो राजा आदमी हैं बहूजी, एक आना आपके हाथका मैल है, तीन ही आने दे दो।"

"ना, ना, मै इन बातोंमें नहीं आया करती। तेरी सौ बार ग़रज़ हो, तो बेच, नही अपना रास्ता नाप!"

भाभी अपना कसीदा निकालने लगी। यह उसके अन्तिम निर्णयकी घोषणा थी। चमारीने आकुल आँखोंसे आकाशकी ओर देखा। सन्ध्या सिरपर मण्डरा रही थी। एक लम्बी साँस छोड़कर तीनों गुच्छियाँ उसने एक ओर रख दी। टन्नसे दो इकन्नियाँ उसके सामने फेंक दी गई। उन्हें उठाकर सुस्त-सी वह चल पड़ी।

दुखी होकर रमेशने कहा—"तुमने इस ग़रीबका एक आना लूटकर बहुत बुरा किया भाभी!"

"इसमें लूट-खसोटकी क्या बात है। यह तो सौदा है भैया!"

"जी हाँ, यह सौदा है" कुढ़कर रमेशने कहा—"उस बेचारीने तीन आनेके लिए तीन गुच्छियाँ बाँधीं। सन्ध्या न हो आती, तो वह तीन ही आने लेती। अब जाने बेचारीका कौन-सा काम रुका रह जायेगा!"

"ये आसमानी तार न जाने तेरे पास कहाँसे आया करते हैं!"

रमेशके कहनेसे कालू उसे बुला लाया। एक आना उसे देकर रमेशने कहा—"सच-सच बताओ बहन, दो आने लेकर तुम सुस्त क्यों हो गई थी?"

करुणासे उसका गला रुन्ध गया। खाँसकर उसने कहा—"बाबूजी!

घरमें बीस दिनसे लड़का बीमार पड़ा है और कई दिनसे बताशे माँग रहा है। चलते समय उसे कह आई थी कि बेटा, एक आनेका नमक और एककी मिरच तो लानी ही हैं। गुच्छियाँ तीन आनेमें बिक गई, तो तेरे लिए बताशे ज़रूर लाऊँगी।

अब मैं सोच रही थी कि घर जाते ही वह बताशे माँगेगा और दुखी होगा। वैसे तो बाबूजी, रोज़ कहाँ बच्चोंको मिठाई खिलाई जाती है, पर बीमारी-सीमारीमें तो बच्चेका मन रखना ही पड़ता है!"

रमेशने पावभर बताशे मँगवाकर उसके पल्लेमें डाल दिये। आशीर्वाद देती वह इकन्नी दे चली गई। मैंने भीगी आँखोंसे देखा, उसका पैर अब जमीनपर नहीं पड़ रहा था—छातीसे बताशे चिपटाये; जैसे वह उड़ी जा रही थी।

अब भी वह कभी-कभी रमेशके घर आती है और उपलों, चनेकी गुच्छियों एवं गन्नोंके रूपमें अपने प्रेमका दान कर जाती है। भाभीकी अब वह एक सहेली-सी है।

पेड़की पीड़ा

यात्री धूपमें दूरसे चला आ रहा था। गरमीमे झुलसा, प्याससे अध-मरा और लम्बी यात्रासे थका-मादा। जाने कैसे मनहूस रास्तेपर वह आज चढ़ चला कि न कही कोई कुआँ मिला, न छाया, न पड़ाव और न सहयात्री ही कि संकट सहल होता।

यात्रीको लगा कि वह अब घड़ी दो घड़ीमें ही गिर जायेगा और आकाशमे मण्डराते चील-गिद्ध उसे जीतेजी ही नोच खायेगे।

भय उसके मनके चारों ओर कुछ ऐसा छा गया कि चलते-चलते भी उसे लगा कि वह गिर गया है और गिद्ध उसे नोच रहे है।

भयविह्वल हो, उसने ऊपरको मुँह उठाया, तो उसे सामने मोड़पर ही एक हरा-भरा विशाल बटवृक्ष दिखाई दिया।

उसमे नया जीवन आगया और उसके गिरते पैर, उचककर उसे वटवृक्षकी छायातक ले आये।

वटवृक्षके नीचे घनी छाया ही न थी; शीतल जलका श्रोत भी था। पानी पीकर प्राणोंमें प्राण आये और पैर पसारकर उसने एक झपकी ली, तो पैरोंने बल पकड़ा। सूर्य ढलावपर आया, धूप हल्की पड़ी, वह उठकर चलनेको खड़ा हुआ।

पेड़को थपथपाकर उसने कहा—"तुम्हारी कृपाका ऋण मुझपर आजन्म रहेगा; सचमुच आज तुम्हारी गोद न मिलती तो, मै जीवित न रहता।"

पेड़ने कहा—"ठीक है, मै भी तुम्हें पाकर जी उठा हूँ, धूप और थकानसे तुम्हारी जो गति हो रही थी, वही मेरी इस सुनसान इकलेपनसे। मुझे यह संसार अब तुम्हें पाकर बसा हुआ दीखने लगा है!"

"तब तो तुम मुझे बहुत याद करोगे पीछे ?" यात्रीने कहा, तो सहमकर पेड़ने पूछा—"क्या तुम जा रहे हो कहीं और ?"

"हाँ, मैं तो यात्री हूँ और मेरी मंज़िल अभी दूर है।" सुनकर पेड़के आँसू उमड़ आये और यात्रीको लिपटते हुए-से उसने कहा—"ना, ना, मै भला तुम्हें कैसे जाने दे सकता हूँ !"

यात्री हँस पड़ा ज़ोरसे और तब उसने कहा—"मेरे भोले भाई, जो कही मार्गमें रुक जाये, तो वह यात्री कैसा ? हाँ, यह हो सकता है कि तुम मेरे साथ चलो। मै तुम्हें अपने घर अपने बड़े भाईकी तरह रक्खूंगा और तुम्हे ज़रा भी कष्ट न होगा वहाँ।"

"मै कैसे जा सकता हूँ कही; तुम देखते नही कि मै पेड़ हूँ !"

"और मैं कैसे ठहर सकता हूँ कही; तुम देखते नही कि मैं एक यात्री हूँ !"

पेड़ने कोई उत्तर नही दिया, तो यात्रीने एक पैर आगे बढ़ाया और अत्यन्त कोमलतासे पेड़की ओर देखा।

पेड़ क्रोधसे काँप रहा था।

बहुत ही कड़वे होकर उसने कहा—"भूल गये तुम कृतघ्न, कि मैं तुम्हें अपनी छाया न देता, तो तुम कभीके मर गये होते !"

भीतर तक मीठे होकर यात्रीने कहा—"मै उस कृपाको कैसे भूल सकता हूँ भाई ! विश्वास रक्खो, मैं जहाँ भी रहूँगा, तुम्हारा यश गाऊँगा।'

कही दूरसे आशा की एक किरण-सी पाकर पेड़ने कहा—"मुझे यश की नही, तुम्हारी ज़रूरत है, गालियाँ ही चाहे देते रहो, पर मेरे पास रहो।"

यात्रीने कहा—"तुम पेड़ हो और न चलना तुम्हारी विवशता है। मै यात्री हूँ और न रुकना मेरी विवशता है।"

और यात्री चल पड़ा; चलता ही गया।

पेड़ खड़ा सोचता रहा—"मैंने उसे नाशसे बचाया, क्या यही मुझे उसका बदला मिला ? कैसी रूखी है यह दुनिया !"

यात्री चलते-चलते सोचता रहा—"मैं पथके आश्रयोंको यों पकड़कर बैठा रहता, तो यहींतक कैसे आता भला !"

पेड़ अपनी जगह खड़ा ही रहा।

यात्री अपनी राह चलता गया।

अनुभव

"जीवनका सबसे सुन्दर समय कौन है ?"
जिज्ञासुने पूछा।
माने कहा—"बचपन।"
सिपाहीने कहा—"यौवन।"
विचारकने कहा—"बुढ़ापा।"
मालीने कहा—"पूरी तरह पकने और टपकनेके बीचके कुछ क्षण !"

ग़नीमत हुई

राधारमण हिन्दीका यशस्वी लेखक है। पत्रोंमें उसके लेख सम्मान पाते है और सम्मेलनोंमें उसकी रचनाओंपर चर्चा चलती हैं। रात उसके घर चोरी हो गई। न जाने चोर कब घुसा और ट्रंक उठा ले गया—शायद जाग हो गई और वह भागा।

राधारमण बहुत परेशान है। बार-बार उसके मुंहसे निकल पड़ता है—"हाय, मेरी तो सारी उमरकी कमाई चली गई!" वह पागल हुआ जा रहा है। बात हवा पर चढ़ी, पड़ौसमें फैल गई—पचासों आदमी आ जुटे—एक भीड़ लग गई।

"अब हुआ, सो हुआ। भगवान् और देगा। दुखी मत हो, सन्तोष कर बेटा!" बूढ़ोने सान्त्वनाके शब्द कहे।

कई तरुण कण्ठ एकसाथ खुल पड़े—"राधे! आखिर चला क्या गया?"

"मेरावाला ट्रंक चला गया और देखो, उसके पास ही किशोरीके जेवर-का ट्रंक बच गया!"

"क्या था तुम्हारे ट्रंकमें?" उत्सुकता उमड़ पड़ी।

"पुराने मासिक पत्रोंकी कतरनें और मेरे तीन ग्रन्थोंकी पाण्डुलिपियाँ थीं। हाय, अब क्या होगा भगवान्!"

बूढ़ोंकी आकुलता शान्त हो गई। उन सबकी ओरसे ही जैसे, रमाशंकरने कहा—"खैर, ग़नीमत हुई, बेटा कि जेवर बच गया। काग़ज़ोंका क्या, फिर लिख लेना। तू तो रात-दिन लिखता ही रहता है।"

बिहारी दादाने पूर्ण सन्तोषकी मुद्रामें लौटते हुए कहा—"ले बोल, हम तो घबरा ही गये थे कि जाने क्या दौलत लुट गई !"

राधेने इधर ध्यान नहीं दिया। उसके कलेजेमें काँटा-सा चुभ रहा था—"ख़ैर गनीमत हुई !" और वह सोच रहा था कि उसके ट्रंककी जगह किशोरीका जेवर चला जाता, तो वह भी यही कहता !"

प्रश्नोत्तर

आज दफ़्तरमें बड़े साहब आये, तो जैसे ज्वालामुखी फट पड़ी। बात कुछ न थी, किसीका कोई दोष भी न था, पर बरस पड़े।

एक 'ऐण्ट्री'को देखकर चन्द्रभानसे बोले—"यह डाकख़ानेकी रक़म फुटकर ख़र्चखातेमें क्यों चढ़ा रक्खी है?" और रजिस्टर उसके ऊपर दे मारा। उसने अपनेको सम्भाला और रजिस्टर साहबके सामने रखते हुए कहा—"इसकी डिटेल देख लीजिये। यह रक़म असलमे...."

बात बीचमें ही थी कि साहब चिल्ला पड़े—"रास्केल! ज़बान चलाता है। सूअर, हमको हिसाब देखना सिखायेगा।"

चन्द्रभान कहता है—मनमें आया, साहबकी नेकटाई पकड़ लूँ और दो ठोकरें जमाऊँ, पर नौकरी, श्रीमतीजी और बच्चे! ख़ूनकी घूँट पीकर रह गया। साथके चार दूसरे बाबुओंकी भी यही दशा हुई।

पाँच बजे शामको जब दफ़्तरसे चले, तो सब ख़ामोश थे; जैसे अपमानकी उस घूँटको पचानेका प्रयत्न कर रहे हों। बड़े बाबू अनुभूतिकी तीव्रतापर विवश सन्तोष और निर्लज्जताके ताने-बानेसे बुना पर्दा डालते हुए बोले—"क्या करें भाई! इस कम्बख़्त नौकरीके लिए सब कुछ सहना पड़ता है।" ज़रा रुककर, जैसे अपना मन समझा रहे हों, बोले—"बड़ा साहब, ज़बानका बड़ा ही कड़वा है, पर एक बात है—इण्क्रीमेण्टके मामलेमें बहुत ही फ़राख़दिल है।"

टी स्टॉल आ गया और सब चाय पीने लगे, पर चन्द्रभानके गले वह न उतरी और वह इधर-उधर देखने लगा। सामनेके गोल चक्करपर कुछ मज़दूर अपना झाबा लिये बैठे थे। सर्दी बहुत थी, वे सेक रहे थे पत्ते जलाये।

अपमानकी पीड़ामें उभरा एक प्रश्न चन्द्रभानके सामने आ गया—"मैं दफ़्तरमें बाबू हूँ और ये मज़दूर। मेरा दफ़्तर मुझे कोट-पतलून देता है, पर मैं इन्हें पहनकर जितना काँप रहा हूँ, उतने ही ये अपनी फटी चादरें लपेटे काँप रहे हैं। इस नौकरीसे समाजमें इन मज़दूरोंकी अपेक्षा हमारी अधिक प्रतिष्ठा है, पर दफ़्तरमें तो रोज़ जूते ही खाने पड़ते हैं। फिर इस नौकरीमें ही क्या विशेषता है?"

इसी समय उसके पाससे निकलकर एक नया मज़दूर उन मज़दूरोंमें जा मिला।

"आज कहाँ रास्ता भूल आया भाई?" एक मज़दूरने उससे पूछा।

"आज ठेकेदारका जनाज़ा निकाल आया। बदमाश माकी गाली देता था। मैंने भी आज रोड़ियोंपर डालकर ऐसा रगड़ा कि बेटा तीन दिन हल्दी पियेगा।" अभिमानसे उसका चेहरा खिल रहा था।

"अरे भाई, अच्छी नौकरी थी। यों ही झगड़ा मोल लिया" पहले मज़दूरने समझाया।

"पर भाई! दबें क्यों, जब अपनी मेहनतका खाते हैं! फिर भाई, रिज़क़का ठेका तो रहीमने लिया है। नौकरी नहीं, तो अपना झाबा तो है!" स्वावलम्बके भावसे उसका चेहरा और भी खिल गया।

चन्द्रभानने मन ही मन अपने प्रश्नका स्वयं उत्तर दिया—"बस, दफ़्तरकी नौकरीमें यही विशेषता है!"

लाल बिजार

लाल बिजार गर्राया जवान था। अपने इलाकेमें वह जिधर निकल जाता, आतककी आँधी आ जाती ! अपने खेतसे उसे भगा देनेकी हिम्मत गाँवके किसी लटैतमें न थी। सामनेसे उसे आता देखकर, बड़े-बड़े लठैत कन्नी काट जाते थे।

बैलगाड़ी संसारमें उसकी सबसे बड़ी शत्रु थी। पहियोंकी घरघराहट, झंगकी घोर और घण्टियोंकी मीठी टुन-टुन सुनते ही उसका खून खौल उठता और वह जैसे आपेसे निकल चलता।

उस दिन वह उमंगसे दुम उभारे, खड़ा खेतमें चर रहा था कि ज़मींदारकी गाड़ी उधर आ निकली। गर्दनको गर्वसे उभारकर उसने देखा और दो ही छलाँगोंमें वह गाड़ीके सामने आ गया।

घृणाभरी आँखोंसे बैलोंकी ओर देखकर उसने कहा—"तुम मेरी महान जातिके कलंक हो, गुलाम ! तुम्हें अपने बलिष्ठ कन्धोंपर दूसरोंका जुआ रखते शर्म नहीं आती !"

और एक ही झटकेमें उसने गाड़ी उलट दी।

× × ×

देहातसे मस्तीमें झूमता, पथ भूला-सा, वह एक दिन राजधानीमें घुस आया और म्यूनिसिपैलिटीमें पकड़ा गया। लाठियोंकी निरन्तर मार और भूखकी ज्वालामें उसकी सारी ऐंठ झुलस गई और नाथ बीन्धकर, वह कूड़ा ढोनेकी गाड़ीमें जोड़ दिया गया।

लालू तड़फा, बिदका और मचमचाया, पर धीरे-धीरे उसे गाड़ीका जुआ, नाथके झटके और हण्टर सभीकी सहतड़ पड़ गई।

उस दिन वह बारह पैरोंका बोझा अपने चार बलिष्ठ पैरोंके बल

खीचे; खत्तेकी ओर जा रहा था कि ज़मीदारकी वही गाड़ी उधर आ निकली। लालूने गाड़ी और बैल दोनोंको देखा और अभिमानकी तीक्ष्णता स्वरमें साधे, नथने फुलाए, उसने कहा—"ज़मीदारकी यह छिपटियासी गाड़ी कन्धोंपर चिपकाए, क्या इतरा रहे हो ? मेरा बोझ तुम दोनोंपर भी लद जाये, तो बच्चू ! भेजा निकल पड़े !"

बैलोंकी आँखोंमे उपहास फूट पड़ा—"जीवनका असली तत्व तुमने शायद अब समझा है लालू मियाँ !"

योजना

एक हैं धनपति, एक है निर्धन; दोनों पड़ोसी। धनपतिकी दो कन्याएँ बड़ी शारदा, छोटी सुधा। निर्धनकी एक कन्या—ईश्वरी। सुधा और ईश्वरी सहेली-जैसे जीवनमें सदा ही उन्हें एक होकर रहना हो!

धनपति और निर्धन, दोनों पड़ोसी सार्वजनिक कार्यकर्ता और धनपतिकी पत्नी भी महत्त्वाकांक्षी। उस दिन वे बोली—"सोचती हूँ अगले नववर्ष पर पाँच हज़ार रुपये दे, अपने विद्यापीठका आरम्भ बस कर ही दूँ!"

तीनों लड़कियोंने उनकी बात सुनी। शारदाने वर्तमानके दर्पणमें भविष्यका एक स्वप्न-सा देखते हुए कहा—अभी तो नहीं, पर एक विद्यापीठ मैं भी आरम्भ करूँगी और उसे पचीस हज़ार रुपये दान दूँगी।"

सुधा और ईश्वरी चुप रहीं, पर दूसरे दिन उन्होंने कहा—"हम भी एक विद्यापीठ खोलेंगी।"

"अच्छी बात है, पर कैसे खुलेगा आपका विद्यापीठ?" ईश्वरीके पिताने लाड़से पूछा।

जल्दीसे सुधा बोली—"हम दोनों नदीके तटपर किसी गाँवके पास एक पेड़के नीचे जा बैठेंगी। मैं तो एक पेंटिंग बनाऊँगी और ईश्वरी एक छप्पर शुरू करेगी। पेंटिंग जब बन जायेगी, तो हम दोनों गाँवमें जाकर वह पेंटिंग बिना कुछ लिए ही किसी दूकानपर सजा देंगी। इसी तरह तीन-चार पेंटिंग बनाकर हम जगह-जगह गाँवमें लगा देंगी। इससे गाँवके तमाम बच्चे हमें जान जायेंगे और हमारे पास आने लगेंगे। हम दोनों उन्हें पढ़ाने लगेंगी और छोटे-छोटे पेंटिंग बनाकर भी देंगी।

बस बच्चोंके मा-बाप कहेंगे—"कैसी अच्छी हैं ये लड़कियाँ।" वे

हमारा छप्पर जल्दी-जल्दी बनवा देंगे और इस तरह हमारा विद्यापीठ खुल जायेगा।

सुधा चुप हो गई। छोटी-सी ईश्वरीने कहा—"क्यों पिताजी, है न ठीक बात ? आप भी हमारे विद्यापीठमें आया कीजियेगा !"

ईश्वरीके पिताने दोनोंको खींचकर अपनी गोदमें ले लिया। उनकी आँखें बन्द हो गई और उन्होंने दोनों बच्चियोंको चूम लिया।

सुधाके पिता भी वही बैठे थे। उनसे वे बोले—"क्या हमारे राष्ट्र के नव-निर्माणकी सबसे बड़ी योजना यही नही है ?"

वे भी भावविभोर हो दोनों बच्चियोंको देख रहे थे !

पुरस्कार और दान

सेठ मंगनीरामकी पत्नीका आपरेशन सिविल अस्पतालमे क्या हुआ, वहाँ एक मेला जुड़ गया। प्राइवेट वार्डके दो कमरे तो उन्होंने लिये ही थे, उनके सामने एक शानदार शामियाना भी ताना गया। यह शामियाना अपने नीचे बिछी कौच-कुरसियोंके कारण नाचघर-सा हो गया। असलमें यह कुशलक्षेम पूछनेको आनेवालोंके बैठने-उठनेकी व्यवस्था थी। मोटरों-की तो अस्पतालमें नुमायश ही लग गई। सबसे पुराने कम्पाउण्डरका कहना है कि अस्पतालमे ऐसी चहल-पहल तो तब भी न हुई थी, जब गवर्नर महोदयने इसका उद्घाटन किया था।

बड़े डाक्टर दिनमें दो बार सेठानीजीके पास आते थे। दो-तीन बार तो उनकी श्रीमतीजी भी समाचार पूछने आई। दूसरे डाक्टर तो सम-झिये कि उन्हें लिपटे ही रहते थे। कम्पाउण्डरोंका तो यह हाल था कि जैसे वे सेठजीके निजी नौकर ही हों।

खैर, सबकी साधना सफल हुई और सेठानीजी उठ बैठीं। सेठजी तो आज आपेमें ही न थे। उनका हृदय निकलकर फिर अपने स्थानपर लौट आया था। वे धनपति थे। कमाना जानते थे, तो खर्च करना भी।

उन्होंने बड़े डाक्टरको दो सौ पचास रुपयेका फ्रांसका बना चाँदीका एक फूलदान भेंट किया और दोनों डाक्टरोंको सौ-सौ रुपयेकी घड़ियाँ।

पाँचों कम्पाउण्डरोंको उन्होंने दस-दस रुपये दिये और भंगी-भिश्ती को दो-दो रुपये।

पुरस्कारके साथ ही सेठजीने दान भी किया। कोई सौ भिखारियोंको तेलका एक-एक परौंवठा दिया गया और अस्पतालके आपरेशन-रूमको

एक घड़ी, जिसके डायलपर सेठजीका नाम सुन्दर अक्षरोंमें लिखा गया था।

शामियाना उखाड़नेवाले मज़दूरोंने जब कुछ माँगा, तो बड़े मुनीमजीने उन्हें डाट दिया कि यह काम शामियानेवाले दूकानदारका है, कुछ हमारा नही।

और सेठजी अपने घर चले आये।

कम्पा और चम्पा

कम्पाके पड़ोसमें एक पेड़ जाने कब उगा और पनप कर बड़ा हो गया, पर जब ढलते पहर उसकी छाया कम्पाके द्वार पड़ने लगी, तो उसने जाना कि यहाँ एक पेड़ है और उसके साथ उसका भी कुछ सम्बन्ध है।

पेड़ क्या, वह सुगन्धका स्रोत था। उसके पत्तोंमें सुगन्ध थी, फूलोंमें सुगन्ध थी, छालमें सुगंध थी। पवन उसके पाससे निकलती तो सुगन्धसे उसका आँचल भर जाता। सच यह है कि जीवनका एक सजीव स्तम्भ-सा खड़ा, वह सारे वातावरणको सरस किये रहता!

अब उसे कम्पा पानीसे सींचती और बैल-बकरियोंसे बचाती। कभी-कभी अपनी छोटी-सी खटिया, उसकी छायामें डाल वह सुख लेती। पास-पड़ौसका जो भी उधरसे निकलता, उससे भर-भर प्रशंसा करती; करती ही रहती। धीरे-धीरे सब उसे 'कम्पाका पेड़' कहने लगे। कम्पा यह सुनती और फूली न समाती, घरका कामधन्दा छोड़कर भी उसके नीचे बैठी रहती।

× × ×

एक दिन कहीसे आकर चम्पाने अपनी झोंपड़ी उस पेड़के नीचे डाल दी और रहने लगी। चम्पाकी झोंपड़ीपर पेड़की पूरी छाया रहती और झोंपड़ी हर समय सुगन्धसे भरी रहती। चम्पा उसमें सुखसे रहती। ऐसा सुख उसे जीवनभर न मिला था।

पड़ोसमें मतभेद पहले और मेल पीछे है। कम्पा और चम्पामें एक दिन अनबन हो गई। दोनोंका कहीं कुछ साझा-बाँटा तो था नहीं कि बटवारा हो जाता—उनके युद्धका केन्द्र वह पेड़ हो गया। कम्पाने चाहा कि चम्पाकी

झोंपड़ी यहाँसे खिसके और चम्पाने यत्न किया कि कम्पाकी खटिया पल-भरको भी यहाँ न पड़े।

दोनों पेड़को अपना कहती, एकमात्र अपना बनाना चाहतीं, पर दोनों ही क्रोधमें उसकी पत्तियाँ नोचतीं, छाल खींचती और व्यंग बरसाती—कम्पाको तो कभी-कभी इतना क्रोध उभर आता कि चूल्हे से जलती बटलोई उतार, वह उसपर उण्डेल देती और वह तड़फकर रह जाता।

पेड़ दोनोंमें मेल-मिलाप करानेकी कोशिश करता, पर युद्ध उग्र होता जाता। वह समझाता—मैं सोनेकी अंगूठी तो नहीं हूं कि जिसने पहनली, पहनली। मैं तो विशाल वृक्ष हूं, मेरी छायामें तुम्हारी दो ही नहीं, दो और भी झोपड़ियाँ पड़ सकती हैं। सुरभि इतनी है कि तुम दोनों उसे समेट नहीं सकतीं—दूर-दूर रहनेवालों तक भी वह भरपूर पहुँचती है। फिर लड़ाई क्यों? मिलकर रहो, तो वह एक दूसरेकी शक्ति बढ़ाये और वह दोनोंके कुछ काम आये, पर इस तरह तो न तुम दोनों सुखी हो, न मैं ही।

पेड़की बातें दोनों सुनतीं, उन्हें ठीक भी बतातीं, पर मान न पातीं। जब-जब वह मेल-मिलाप का प्रयत्न करता, एक नया विद्रोह फूट पड़ता। दोनोंका उत्साह युद्धमें बढ़ता रहा, पेड़की जीवनमें दिलचस्पी कम होती गई। पहले जो दुःख था, बादमें वही रोग हो गया। पेड़के पत्ते कुम्हलाने लगे, फूल मुरझाने लगे, सुगन्ध बासी पड़ने लगी और सूखा उसे दिन-दिन घेरने लगा, पर न इधर कम्पाका ही ध्यान था, न चम्पाका।

युद्ध एक दिन पूरे वेगपर पहुँच गया और चम्पा अपनी झोंपड़ीमें आग लगा, कहीं दूर देशको चली गई। कम्पा अब सूखते पेड़की छितरी छायामें खटिया डाले बैठी रहती है। कभी-कभी वह मीठी बातें कर पेड़को सरसता देनेका प्रयत्न करती है, पर भीतर इतना ग़ुबार है कि बात मुड़-

तुड़कर पुराने युद्धपर चली जाती है और उसका अन्त कड़वाहटमें ही होता है।

कम्पा दुखी है कि पेड़ नही खिलता, पेड़ दुखी है कि कम्पा मुर्झाई है। सुना है चम्पा भी जहाँ है दुखी है। न किसीको रस दे पाती है, न किसीसे रस ले पाती है। पेड़की ही बातें सोचती रहती है।

यों एक मर रहा है और दो घुन रहे है, पर मैं प्रायः उस पेड़को देखता हूँ, तो सोचता हूँ दो मूर्खताओंके बीच एक विशालता बलि हो रही है और तभी मेरे मनमें आता है—बलि क्या यह तो वध है!

तृप्ति और अतृप्ति

रामा और श्यामा दोनों सगी बहनें हैं। रामाकी उम्र है कोई ६२ वर्ष और श्यामाकी यही कोई ६० के लगभग।

रामा एक नायब तहसीलदारके साथ ब्याही गई थी और अब उसका पुत्र ज़िलाधीश है। उसके सिरपर उसके पति हैं और गोदमें पोते-पोतियाँ—सुख उसपर चारों ओरसे बरस रहा है।

बुढ़ापा है, शरीर ठीक नहीं रहता, तो नये दिन नया डाक्टर आया ही रहता है। सभी डाक्टरोंसे वह यही कहती है—"मुझे अब जीकर क्या करना है डाक्टर साहब; अब तो यही सबसे बड़ा सुख है कि शान्तिसे आँखें मुँद जायें।"

डाक्टर आग्रह और अनुरोध करके दवाकी शीशी दे जाते हैं, लिहाज़ कर वह ले लेती है, पर शायद ही कभी शीशियोंकी डाट खुलती हो।

पति नाराज़ होते हैं, बेटा ज़िद करता है और बहू खुशामद, तो उत्तर मिलता है—"मुझे अब जीकर क्या करना है; अब तो सबसे बड़ा सुख यही है कि शान्तिसे आँखें मुँद जायें!"

जीवनका घट सुखके नीरसे परिपूर्ण है। बुढ़िया डरती है कहीं कोई बून्द धूलमें गिरती न देखनी पड़े!

(२)

श्यामा भी आजकल रामाके ही घर है। वह एक तहसीलदारसे ब्याही गई थी, पर ६ साल बाद ही वह विधवा हो गई। सुखका देवता द्वार तक आया और लौट गया। दर्शन तो हुए, पर पूजाकी थाली सज न पाई।

बुढ़ापा है, छोटे-मोटे झटके आते ही रहते है, फिर भी स्वास्थ्य बुरा नहीं है। रामाको देखने डाक्टर आता है, तो श्यामा भी खम्भोंकी आड़ लेती, वहाँ तक आ पहुँचती है और बातों बातोंमें अपनी नब्ज़ डाक्टरके हाथ थमा देती है।

उसकी मुख्य शिकायत होती है—"डाक्टर साहब, ऐसी दवा दो, जिससे गातमें रक्त बढ़े। जाने क्या घुन लग गया है कि गात गिरा-सा रहता है।"

डाक्टर जो दवा भेजते है, श्यामा उन्हें नियमसे खाती है और घी दूधके बारेमें भी कभी असावधानी नहीं बरतती। बुढ़िया कहलाना उसे भला नहीं लगता और मृत्युके नामको भी वह अशुभ मानती है।

जीवनका खेत सूखा पड़ा है। बुढ़िया सोचती है कौन जाने कब आकाशकी कोई बदली एक फुँहार इधर छितरा दे!

सुराही और प्रतिमा

मनमोहन उस दिन बड़े चावसे एक सुराही खरीदकर लाया। उसमें उत्साह था कि वह अब ठण्डा पानी पियेगा और पासपड़ोसके लोग भी उसकी सुराहीका ठण्डा पानी पी, अपनेमें कृतार्थ और उसके प्रति कृतज्ञ होंगे।

खुशी-खुशी उसने सुराहीमें पानी भरा और चावसे उसने एक बार उसे अपने हाथोंपर उठा लिया, पर उसका चाव पके पत्ते-सा झरगया; जब उसने देखा—यह सुराही तो पेन्देमें रिसती है।

वह सुस्त हो गया, पर तभी चुस्त होकर उठा कि चुटकीभर आटा गून्द लाया और उसे उसने पेन्देपर साँट दिया।

सुराही काम देती रही।

***

मनमोहन उस दिन बड़े चावसे सरस्वतीकी एक प्रतिमा खरीद लाया और उसने उसे विधि-विधानके साथ अपने मन्दिरमें प्रतिष्ठित कर दिया।

उसमें उत्साह था कि अब उसकी साधना निरन्तर गतिशील होगी और पास-पड़ौसके लोग भी उसकी प्रतिमाका पूजन कर अपनेमें कृतार्थ और उसके प्रति कृतज्ञ होंगे।

उसने आरती जलाई और शंख बजाया। चारों ओरसे मैं-तू आ जुटे। भक्तिकी सुरभि चारों ओर फैल गई।

पूजाकर पास-पड़ौसी लौट गये, पर मनमोहन वही बैठा रहा। प्रतिमा औरोंके लिये पूजाकी वस्तु थी, पर उसका तो वह जीवनप्राण था। वह उसमें लीन-सा डूबा रहा।

***

बीचमें एक बार वह विभोर हो, प्रतिमाकी ओर उमड़ा, तो उसे बिजली-सी छू गई। भौचक हो, उसने देखा—प्रतिमा खण्डित है। उसके पैरकी एक उंगली गिर गई है।

वह एकदम शोकके समुद्रमें डूब गया।

अब वह चुपचाप मनमारा-सा मन्दिरमें बैठा रहता है। लोग पूजा करने आते हैं, तो वह प्रतिमाका पैर फूलोंसे ढक देता है। सब उसकी प्रशंसा करते हैं, पर उसका मन नहीं खिलता!

व्यंगसे साथी कहते हैं—"ऐसी प्रतिमाके चरणोंमें बैठकर भी तू सुस्त है अभागे!"

मनमोहन सुनता है, तो उसके कलेजेपर कोई अंगारेकी क़लमसे लिख-सा देता है—ऐसी प्रतिमा!"

***

कभी कभी वह आप ही आप सोचता है—सुराहीपर आटा साँटकर काम चला लिया था, तो क्या प्रतिमापर आटा नहीं सँट सकता?

फिर वह आप ही आप हँस पड़ता है—'सुराही सुराही है, प्रतिमा प्रतिमा है!'

उनकी वाणी

दो मास बाद चन्दन घर लौटा, तो देखा कि कमरा भूतखाना बना हुआ है। छत और कोने जालोंसे भरे थे और जमीन धूलसे ढँकी थी। उसने झाड़ू उठाई और जाले साफ करने लगा। जाला टूटते ही मक्कड़ अपने लम्बे-लम्बे पैरोंसे दौड़ते और दूसरी जगह चिपक जाते। वह फिर उन्हें झाड़ूसे नीचे गिराता और वे फिर ऊपर दौड़ते।

थोड़ी ही देरमें चन्दन थक गया और झल्ला उठा। पाँच-सात झाड़ूके हाथ कसकर उसने मारे, तो मक्कड़ोंकी सारी शेखी धूलमें मिल गई। किसीका सिर फूटा, तो किसीका पैर टूटा। सबके सब ज़मीनपर ऐसे पड़े थे, जैसे आन्धीके आम। आवेशमें उसके मुँहसे निकल गया—"बदमाशोंने मकानमें ऐसा अड्डा जमाया कि जैसे ये हज़रत ही उसका किराया भर रहे हों।"

झाड़ूसे एक गत्तेपर बुहार वह उन्हें बाहर फेंकने चला। उसने सुना, वे आपसमें बातें कर रहे थे।

एकने कहा—"पता नहीं आज कौन दुष्ट हमारे घरमें घुस आया। कितने आनन्दसे रह रहे थे हम लोग!" यह किसी बच्चेकी आवाज़ थी।

अपने पुराने अनुभवोंको दुहराते-से एक बूढ़ेने कहा—"इंसान एक ऐसा राक्षस है कि वह किसीको शान्तिसे बैठे कभी देख ही नहीं सकता!"

चन्दनको बिजली-सी छू गई और गत्ता उसके हाथसे छूट गया। वह सुस्त लौट आया। पता नहीं, फिर वे क्या-क्या कहते रहे!

उदार

दीनाकी पुत्रीका विवाह उठा, तो वह दब-सा गया। कुछ न करो, तब भी १००-२०० चाहिएँ, पर पास तो भुनी भांग नहीं।

दुखियाया-सा वह ब्रह्मचारी जगजीवनके पास गया। पहले भी उन्होंने उसके बिगड़े काम बनाये थे!

सोचकर उन्होंने उसे अपने एक भक्त धनीके नाम सहायताका पर्चा लिख दिया। वे निकटके ही एक दूसरे नगरमें रहते थे।

दीनाने अपने घरकी झाड़-पोंछ की और ५ रु० अण्टीमें लगा, वह घरसे निकला। भक्तजी अपनी बड़ी हवेलीके बाहर बैठे थे। परचा देखकर बोले—"हाँ, हाँ, बड़ी सुन्दर बात है। कन्यादानसे बड़ा कोई पुण्य नही। लड़कीके हाथ पीले हो जायेंगे और तुम गंगा नहा जाओगे। हम भी ज़रूर जो होगा करेंगे। कुवँर साहब मसूरी गये है। ४–५ दिन में आयेंगे। तुम सोमवार-मंगलको आजाना। इस यज्ञमें तो जितने चावल अपने पड़ जायें, कल्याण ही है।"

दीना शामकी गाड़ीसे घर लौट आया। उसके पाँच रुपये खर्च हो गये थे और हाथ कुछ न आया था, फिर भी वह खुश था। उसकी उम्मीदोंके अश्व कनसरियाँ ले रहे थे।

× × ×

मंगलको दीना फिर चला, तो उसकी जेबमें एक पड़ोसीसे उधार लिये पाँच रुपये थे। वह भक्तजीकी हवेलीपर पहुँचा, तो कुवँर साहब बाहर ही खड़े थे। दीनाके लिए यह मुँह माँगा वरदान था।

दीनाकी बात सुनकर बोले—"हाँ, हाँ, वे कह तो रहे थे, इस बारेमें कुछ मुझसे, पर मैंने ठीक ध्यान नहीं दिया। वे सोमवती अमावस्याका

स्नान करने हरद्वार गये है। ४-५ दिनमें लौटेंगे। तुम सोमवार-मंगल तक आजाना। जब हमारे ब्रह्मचारीजीने लिख दिया है, तो कोई बात नही। काम हो जायगा तुम्हारा।

दीना शामकी गाड़ीसे घर लौट आया। उसपर पाँच रुपये कर्ज़ हो गया था और हाथ कुछ न आया था। फिर भी वह खुश था। उसकी उमीदोंके अश्व अब हिनहिना उठे थे।

× × ×

फिर मंगल आया और फिर दीना चला तो उसकी जेबमे एक सम्बन्धी-से उधार लिये पाँच रुपये थे। वह भक्तजीकी हवेलीपर पहुँचा, तो भक्त जी और कुँवर साहब बरामदेमें बैठे थे। दीनाके लिए यह भगवान्का दर्शन था।

उसे देखकर भक्तजी बोले—"अच्छा आगये तुम। बड़ा अच्छा हुआ। आनन्दसे बेटीको उसके घर भेजो और सुखकी साँस लो। जिसकी धी सुखी, उसका जहान सुखी।"

कुवँर साहबके कानमें भक्तजीने कुछ कहा, तो उन्होंने एक पर्चेपर कुछ लिख, दीनाके हाथमें देते हुए कहा—"लो, मुनीमजीसे रुपये ले लो!"

दीनाके हाथमे पर्चा क्या आया, खजानेकी ताली आगई। भाव-विह्वल हो, उसने कहा—"आपने मुझपर बड़ी कृपा की भक्तजी! मैं जन्मभर आपका ऐहसान न भूलूँगा।"

भक्तजी बोले—"इसमें ऐहसानकी क्या बात है भाई; यह तो हमारे ब्रह्मचारीजीका हुक्म है।"

वह पर्चा लिये चला, तो धरतीपर उसके पैर न पड़ रहे थे। सामने ही मुनीमजी गद्दीपर बैठे थे फिर भी उसने कन-अँखियोंसे परचेकी तरफ देखा—उस पर १०१) रुपये लिखे थे। दीनाके अन्तरमें पुत्रीके शानदार विवाहका एक चित्र-सा घूम गया।

पर्चा लेकर मुनीमजीने चाँदीके ११) रुपये उसके सामने रख दिये।

भौचक हो, उसने पूछा—कितने ?

"ग्यारह रुपये है भाई !" मुनीमजीने कहा, तो ग्यारह घण्टे-से दीनाके दिमाग़में टन्ना उठे।

"ग्यारह ?" दीनाने इस तरह पूछा कि जैसे सब दिशाएँ एक साथ बोल उठी।

"हाँ, ग्यारह—दस और एक !"

परचा लेकर दीनाने पढा। उसमे दानखाते ११ रु० देनेको ही लिखा था—अक्षर क़तई साफ़ थे !

दीना खड़ा था। ११ रुपये गद्दीपर पड़े थे। दीना उन्हें देखता, अपने १५ रु० को याद करता और सोचता था कि अगले मंगलको बेटीका ब्याह है !

एक प्रश्न

मैं एक बहुत बड़ी मिलमें क्लर्क हूँ और आशा है कि कुछ ही वर्षोंमें हेडक्लर्क हो जाऊँगा। समयपर, अच्छा वेतन मिल जाता है और नौकरी छोड़ते समय अच्छा खासा प्रोवीडैण्ड फण्ड और पुरस्कार मिल जायेगा। घरमें मैं हूँ, पत्नी है, मा है, दो बच्चे है। पड़ौसी भले है, मित्र समयपर काम आनेवाले। कही कोई अभाव नही है—मैं अपनेमें सन्तुष्ट हूँ, पर सुखी क्यों नही हूँ ?

शामको दफ्तरसे निकलता हूँ, तो देखता हूँ कि अंगरेज लोग मस्तीसे उछलते, आपसमें निर्द्वन्द दंगा करते चले जा रहे है। उन्हें जैसे कोई चिन्ता नही—मस्ती ही मस्ती है। एक दिन ब्राऊनिंग कह रहा था—"ओह मि० शारदा, रोटियाँ हम कमा चुके; बस अब कल सुबह नौ बजेतक मौज है और हम है।"

मानता हूँ, ब्राऊनिंग ठीक कहता है। सबसे बड़ी चिन्ता रोटीकी है; वह पाँच बजेतक कमा चुके, अब मौज ही मौज होनी चाहिए, पर मौज कहाँ है ? दफ्तरसे घर ऐसे जाता हूँ, जैसे अपनी माके 'फूल' हरद्वार लिये जा रहा हूँ।

पत्नी इतनी सुशील है कि सारे पड़ौसमें उसका कोई जोड़ नहीं। सदैव मुझमें लीन, थोड़ेमें सन्तुष्ट, सुन्दर और सरस। मुन्ना जब सर्दियोंमें बीमार पड़ा तो पाँच सौ रुपये खर्च हुए। कुछ रुपये मित्रोंसे भी उधार लेने पड़े। वह अच्छा हो गया, तो बोली—"जबतक ये रुपये न उतर जायेंगे, मैं कोई कपड़ा न लूँगी और हाँ, तबतक या तो दालमें ही घी लेंगे, या रोटी ही चुपड़ेंगे।"

ऐसी पत्नीको पाकर कौन असन्तुष्ट होगा ? कह तो रहा हूँ कि

असन्तोष कहीं है ही नहीं,; पर सुख भी तो नहीं है ! जीवन मैशीनके पुर्ज़ेकी तरह घूम रहा है। कहीं कोई अभाव नहीं है, कुछ और चाह भी नही है। अपनी सीमाएँ जानता हूँ और सोचता हूँ, सभी कुछ तो है। फिर भी सुख क्यों नहीं है ? सुख; जो जीवनको ब्राऊनिंगकी तरह मस्तीसे भर दे।

और बस जीवनका यही एक प्रश्न ?

मृत्युकी चिन्तामें

अंग्रेज़ी क़ब्रिस्तानमें एक बूढ़ी माँ हर शुक्रवारको आती है और अपने जवान बेटेकी क़ब्र पर फूलोंका एक सुन्दर गुलदस्ता चढ़ा जाती है।

उसका यह बेटा छ साल हुए अपनी भरी जवानीमें स्वर्ग सिधारा था। उसकी इच्छा है कि वह अपने पुत्रके पास ही दफनाई जाये। उसने अभीसे अपने पुत्रकी क़ब्रके बग़लमें अपनी भावी क़ब्रके लिए स्थान सुरक्षित करा लिया है।

जब शुक्रवारको वह गुलदस्ता चढ़ाने आती है, तो हसरतभरी निगाहोंसे उस ज़मीनको देख जाती है। कभी-कभी उसके मुँहसे निकल जाता है—"ओह, मेरे ईश्वर! जाने मैं कब यहाँ सोऊँगी!"

बुढ़िया जीती है, पर मृत्युकी चिन्ता ही उसके जीवनका सुख है।

शास्त्री जी

बड़े मज़ेदार आदमी है मंसाराम शास्त्री।

वे कई भाषाओंके विद्वान है और उनका जीवन एक इन्द्रधनुषी जीवन है, जिसमें अनेक रंग एक साथ समाये हुए है।

यों वे सदा अपनी पण्डिताऊ हिन्दीमे बोलते है, जिसमे फ़ारसी-अरबीका बहिष्कार और संस्कृतका शृगार होता है। हाँ, बोलते-बोलते भारतीय संस्कृतिपर बात आ जाये, तो भक्तिकी धारामें बहने लगते है और उनकी हिन्दी शुद्ध संस्कृतमें इस तरह बदल जाती है, जैसे लहरमें लहर!

उनका जीवन एक इन्द्रधनुषी जीवन है, जिसमें अनेक रंग एक साथ समाये हुए है। भारतीय संस्कृतिकी शान्तधारामें तैरते-तैरते वे अन्तर्राष्ट्रिय राजनीतिके प्रचण्ड प्रवाहमे कब आ जायें, इसे कोई नही जानता। हाँ, यह अक्सर देखा है कि वे शान्तिसे उत्साहमें आजायें, तो उनकी शुद्ध संस्कृत अंग्रेजीमें इस तरह बदल जाती है, जैसे काँटेपर रेल!

उनकी बातें आगे बढ़ती रहती है और जाने कब अन्तर्राष्ट्रिय राजनीतिसे घरेलू जीवन पर आ जाती है। कमाल यह है कि हम उनकी बातें न समझ रहे हों, तब भी यह समझ सकते है, क्योंकि अब वे साधारण हिन्दीमें बोल रहे होते है।

बड़े मज़ेदार आदमी है मंसाराम शास्त्री।

डाकू और फ़ौजी

"बाबूजी, भगवान् आपका भला करे।"

उसने करुण कण्ठसे पुकारा और वह देहका पूरा ज़ोर लगाकर थोड़ा-सा मेरी ओर घिसट आया।

देह उसकी दुर्गन्धभरी, कपड़े लगभग चीथड़े और बाल धूलभरे—उसके घुटनोंसे नीचेके पैर उठते न थे, बेकार हो गये थे!

मैंने एक इकन्नी उसके तामलोटमें डाल दी और साथ चल रहे अपने मेज़बानसे कहा—'ओह, कितना दयनीय है बेचारा!'

वे उपेक्षासे हँसे! बोले—"यह ज़ालिमसिंह डाकू है। जाने इस हरामज़ादेने कितने घर उजाड़े भाई साहब! सात वर्ष तक इसने ज़िले भरको नहीं सोने दिया। जो पुलिसवाला इसके पीछे पड़ा, उसे ही इसने काना और नकटा करके छोड़ा।

एक दिन अचानक यह दो फ़ौजियोंके हत्थे चढ़ गया, तो उन्होंने बन्दूक़के कुन्दोंसे इसके घुटने तोड़ दिये। अब बाज़ारमें घिसट-घिसटकर अपने कर्मोंके फल भोग रहा है।

मेरे भीतर भर गये ज़ालिमसिंह डाकू और बाज़ारमें घिसटता यह भिखारी और तब यह वाक्य—'हिंसाने हिंसासे हिंसाको लुंज कर दिया कि हिंसा न कर सके और तब समाजमें एक दयनीय भिखारीकी सृष्टि हुई!'

[२]

घर लौटकर भी मैंने उस भिखारीकी चर्चा की, तो मेरे मेज़बान बोले—"ऐसे दुष्टोंका यही एकमात्र इलाज है भाई साहब!"

बात अपने घरकी हुई, पर मेरे भीतर यह एकमात्र शब्द उमड़-घुमड़ होता रहा और तब मुझे याद आये वाल्मीकि।

वह भी डाकू था। उसे एक दिन मिले कोई ऋषि। डाकूको ऋषि क्या, राव क्या ? उसने उनपर भी शक्तिका प्रयोग किया। ऋषि डरे नही। उन्होंने उसे ढगसे उसका स्वरूप दिखा दिया और तब यह डाकू ही हो गया स्वयं ऋषि !

यह क्या हुआ ? यह अहिंसाकी हिंसापर विजय हुई। तो हिंसा बेकार कर सकती है, अहिसा बदल सकती है !

मन ही मन मैने कहा--भाई ज़ालिम, तू यदि अपने पुराने कर्मोपर सन्तोष नही कर सकता, तो वे फौजी भी गौरवके पात्र नहीं, क्योंकि तू भी समाजमें दयनीयोंकी सृष्टि करता था और वे भी अपनी शक्तिसे समाजमें एक दयनीय ही बना पाये !

शृङ्गार

दिनांक–दिवालीसे दो दिन बाद,

स्थान-इन्दौरका बाज़ार !

एक बैलगाड़ी जा रही थी, जिसका एक बैल गहरा लाल और दूसरा चिट्टा सफ़ेद।

सफ़ेद बैल गेरूके छापोंसे चित्रित; कही पंजा, तो कही चुगड़ेका गोला और कहीं चिन्दनें।

रामनारायण एक भावुक, जो सौन्दर्यका कण भी कही पाएँ, तो डूब-उतरा चलें।

देखकर खिले-खिले-से बोले–"वाह, क्या रूप आया है इस बैल-बेटे पर !"

सुधाकर धरतीका आदमी। उसने ध्यानसे देखा, तो उसके मुँहसे निकल पड़ा––"जिसमें अपना कोई रंग नही होता, उसे जो चाहता है इसी तरह अपने रंगमें रंग लेता है।"

ज़रा रुककर उसने कहा––"इस नाटककी दुखान्तता यह है कि दुनिया इस थोपे हुए रंगको शृंगार कहती है और स्वयं रंगा जानेवाला भी उसपर आँसू या हुंकार नहीं, मुस्कान ही बखेरता है।"

रामनारायण सुधाकरकी ओर देख रहे थे। सुधाकरने देखा, उनकी आँखोंमें उल्लासका नशा एक बार घिरकर बिखर गया है।

चूहड़

उसका नाम चूहड़ था।

एक फूटा हुआ लोहेका थाल, पीतलकी एक पतीली, एक कड़छी, एक थाली और एक अँगीठी; बस यही उसकी सम्पत्ति थी। वह कभी उबले हुए चने और कभी सिंघाड़े बेचा करता था। उसने अपने जीवनमें कभी कोई कपड़ा खरीदा या नहीं; यह सन्दिग्ध है, उसकी धोती और बण्डीने धोबीका घाट कभी नहीं देखा, इसके लिए कई प्रामाणिक साक्षी मिलते हैं।

दूकानका किराया देना उसके वसकी बात न थी। वह मण्डीके बाहर एक थड़ेपर बैठता था। धूप तो शायद उसे लगती ही न थी। बरसातमें पानी पड़नेपर वह इधर-उधर बच जाता।

सप्ताहमें दो बार वह अपने लिए दस-बारह रोटी बनाता। उसकी रोटियाँ नमकीन होती। भोजनमें दाल-शाककी आवश्यकता है, इस सिद्धान्तके वह विरुद्ध था। प्रति दिन प्रातः काल दो रोटी खाकर वह घरसे बाहर निकलता और दिन छिपनेके बाद तक पूरा प्रयत्न करने पर भी जो छँटाक-आधपाव चने बिकनेसे बच रहते, रातमें उन्हें ही खाकर वह ठण्डा पानी पी लेता।

उसका रंग घोर काला था और देह मड़चू। उसके शारीरिक सौन्दर्यकी उपमा इंजनके बुझे हुए कोयलेसे दी जा सकती है।

इस साल सर्दी बहुत पड़ रही थी। चूहड़ नमूनियेकी झपेटमें आगया। डाक्टर, वैद्य, हकीमकी उपयोगिता वह मानता न था और साथी उसके थे केवल आकाशके तारे।

तीन-चार दिन बाद तेज दुर्गन्धने मुहल्लेवालोंको उसके मरजानेकी

सूचना दी, पर उसका अत्येष्टि-संस्कार करनेकी उत्कण्ठा किसीके भीतर न जागी।

पाँचवें दिन चार कहारोंके साथ पुलिसने चूहड़की कोठड़ीका दरवाजा खोला। मिट्टीकी एक हंडिया दोनों हाथोंसे छातीपर चिपटाये चूहड़का शव पड़ा था और उसकी खुली आँखें अब भी उस हंडिया पर लगी हुई थीं।

हण्डियामें रुपये थे! असलमें यह चूहड़के सारे जीवनका संकलित ओज था। किरायेपर आये, चार कहारोंके कन्धे चढ़ा चूहड़ चला गया। पिछले बीसों बरसोंमें चूहड़के बारेमें कभी किसीने एक बार भी न सोचा था, पर आज वह सभीके भीतरकी हलचलोंका केन्द्र था।

पुलिस आज खुश थी और पड़ौसी खिन्न।

उस हण्डियामें कितने रुपये थे? चूहड़की कोठड़ीमें ही जब दीवानजी ने वे सावधानीसे गिने तो सत्रहसौ थे। "ज्योंके त्यों, बिना गिने" वे कोतवाली पहुँचे और कोतवाल साहबने उन्हें अपने एकान्त कमरेमें गिना—वे पन्द्रह सौ चौतीस थे। "खुदा गवाह है" कोतवालने उन्हें "बिना छुए" बड़े दीवानजीको दे दिया कि हिस्सारसदी सबमें बाँट दें। बड़े दीवानजीने सबके सामने उन्हें गिना। वे दस सौ चार थे!

चूहड़की चालीस वर्षोंकी कमाई, इस तरह चार घंटोंमें ठिकाने लग गई। जाने आकाशमें बैठा चूहड़ यह सब देख पाया कि नहीं?

नन्दा

नन्दा कई दिनसे भूखा था--पेटकी ज्वालासे पीड़ित और रोगसे आक्रान्त। उसने देखा--सेठ रामगोपाल मीठे पूड़ोका थाल भरे, देवी-कुण्डपर बन्दर जिमाने जा रहे हैं। गिड़गिड़ाकर नन्दाने कहा--"सेठजी! मैं कई दिनसे भूखा हूँ, जान निकली जारही है। कुछ पूड़े मुझे भी दीजिये।"

"अबे भूखा है, तो शहरमे जाकर माँग। ये हनुमानजीके पूड़े तुझे कैसे दे दूँ?"

"शहर जानेकी हिम्मत नही है सेठजी! बीमारीने मुझे चर लिया है। भूखेकी जान बचानेसे तो हनुमान जी आप पर प्रसन्न ही होंगे!"

"अच्छा रहने दे, मुझे तेरे उपदेशकी ज़रूरत नही है।"

बड़े प्रेमसे बन्दर जिमाकर सेठजी लौटे, तो देखा--नन्दा रास्तेपर पडा है। घृणाके स्वरमें आप ही आप बोले--"अभी तो बदमाश भूखों मर रहा था, इतनेमे सो भी गया!"

यह सुनकर भी नन्दा नही जागा। जागनेको वह सोया ही न था!

दो घोड़े

स्टेशन पर पंजाब मेलकी प्रतीक्षामें एक बहुत क़ीमती गाड़ी खड़ी थी और उसके पास ही एक साधारण ताँगा। ताँगेवाला घासकी लच्छियाँ छाँट-छाँटकर घोड़ेको खिला रहा था और गाड़ीवान एक शानदार वर्दी पहने, अपनी जगहपर बैठा था।

अभिमानसे हिनहिनाकर गाड़ीके घोड़ेने ताँगेके घोड़ेसे कहा—"अरे, तेरी हालत तो बहुत ख़राब है। तू रात-दिन जुता रहता है, पीठपर हण्टर बरसते है, फिर भी तुझे अच्छा खाना नही मिलता।"

"हाँ भाई, मै दिनरात काममें लगा रहता हूँ और जो भाग्यमे है, खाना भी मिल ही जाता है!"

"क्या ख़ाक खाना मिल जाता है, यह सूखा दूबड़ा या चरीके फट्टे! मुझे देख, मेरे मालिकने मेरी सेवाके लिए दो सेवक छोड़ रक्खे है। एक मेरे लिए घास लाता है और दूसरा मुझे मलता है। मै कितना सुखी हूँ!"

मनमें उठी तीक्ष्णताको भीतर ही भीतर हल्का करते हुए तांगेके घोड़ेने कहा—"हाँ भाई, तुम बहुत शानदार हो, पर सुखकी बातें न बघारो —मै तुमसे ज़्यादा सुखी हूँ।"

आश्चर्यसे गाड़ीके घोड़ेने पूछा—"तू मुझसे ज़्यादा सुखी है?" और घृणासे दोहराया—"क्या है रे तेरा सुख?"

"मेरा सुख है मेरा साथी—ताँगेवाला। तुम्हें कुछ भी क्यों न मिले, अपने मालिकके फिर भी तुम ग़ुलाम हो। मुझे यह सुख तो है कि जैसा मैं हूँ, वैसा ही ग़रीब है मेरा ताँगेवाला और हम दोनो एक दूसरेके सुख दुखके साथी है!"

"पर फिर भी मेरी कितनी शान है?"

"हाँ भाई, जानता हूँ कि तुम बीमार पड़ जाओ, तो डाक्टरोंकी भीड़ जुड़ जाये ! पर जानते हो कि मैं बीमार पड़ जाऊँ, तो मेरा साथी खुद बेचैन दवा कूटता फिरे ? इस प्यारके मुक़ाबलेमें तुम्हारी शानका क्या मूल्य है आख़िर ! !"

गाड़ीका घोड़ा हिनहिनाकर चुप हो गया; जैसे अपने अभिमानके लिए अपने ही भीतर कहीं स्थान खोज रहा हो !

रसोइयाजी

श्री अग्रवाल एक रेलवेके मैनेजर थे। शान-शौकतसे रहते और सैलूनमें चला करते। खाने-पीनेके शौकीन थे—अपने बूढ़े रसोइयेको रितेश्दारकी तरह रखते। कोई उसकी कभी शिकायत भी करता तो कहते—"अरे भाई, वो कलाकार है। देखते नहीं, रोज़ आगमें बाग़ लगाता है।"

उनका यह रसोइया उनके ही सैलूनसे कटकर मर गया, तो नये रसोइयेकी दौडधूप शुरू हुई। बहुतसे रसोइये आये और अग्रवालकी कसौटी पर खोटे हो चले गये। उनका सारा दफतर रसोइयेकी खोज में लगा हुआ था।

एक दिन उनके बड़े बाबू एक प्रौढ़ सज्जनको ले आये। बड़ी-बड़ी दाढ़ी-मूछें, माथे पर सिन्दूरका तिलक, कलाईमें डोरीका लच्छा और गलेमें चान्दीमढ़ा रुद्राक्षका बड़ा दाना; ये भी एक रसोइया थे!

इनका रूप देखकर तो अग्रवाल बहुत बिदके, पर खाना खाया तो परच गये। रसोइयाजी रख लिए गये और रख क्या लिए गये, वे अपने छौकके कारण, अग्रवालके मनपर छा गये। वे दाल-सब्ज़ीका ही छौंक न जानते थे, बातोंके छौकमें भी मास्टर थे!

[२]

"रसोइयाजी, खाना आज जल्दी बना लीजिएगा, मैं रातमें आठ बजेकी गाड़ीसे बाहर जा रहा हूँ!" अग्रवालने रसोइयाजी से कहा, तो वे जल्दी-जल्दी हाथ-पैर धो रसोईमें चले गये, पर थोड़ी ही देर बाद वे आकर फिर उनके सामने खड़े हो गये।

"क्या है रसोइया जी ?" अग्रवालने पूछा, तो बोले--"आप इस गाड़ीसे बाहर न जाइये !"

"क्यों, क्या बात है ?"

"बस यही बात है सरकार, कि मै इस गाड़ीसे आपको बाहर न जाने दूँगा; चाहे आप मुझे मार ही डाले !"

कुछ ऐसी बात हुई कि अग्रवाल उस गाड़ीसे बाहर न जा सके और दूसरे दिन प्रातः समाचार मिला कि आठ बजेवाली गाड़ी फ्रंटियरसे टकरा गई। दुर्घटना बहुत भयंकर हुई, जिससे सैकड़ों आदमी हताहत हो गये !

अग्रवाल दिनभर अपने कमरेमे पड़े कुछ सोचते रहे। शामको उन्होंने रसोइयाजीको बुलाकर पाँच सौ रुपये भेंट किये और तुरन्त उन्हें नौकरीसे अलग कर दिया।

कमला

रमेश है विश्वविद्यालयका प्रोफ़ेसर और कमला उसकी पत्नी। दोनोंका विवाह हुए सात वर्ष बीत गये।

दोनों एक-दूसरेसे कहाँतक सन्तुष्ट हैं पता नही, पर दोनों बराबर साथ ही रह रहे है। साथ ही खाना खाते हैं और कभी-कभी साथ ही घूमने जाते है, पर रास्तेमें प्रायः चुप रहते है।

रमेश जब विश्वविद्यालय जानेके लिए घरसे निकलता है, तो उसका चेहरा कभी खिला नही होता!

उस दिन जब रमेश कोल्हापुरकी समाज-सुधार परिषदमें तलाकपर अपना बहुविज्ञापित भाषण दे, घर लौटा, तो पड़ौसियोंने करुणा भरे स्वरोंमें उसे बताया--"भाई, तुम्हारे पीछे तुम्हारा घर जल गया। पता नहीं आधीरात कैसे आग लगी।"

"ऐं!" रमेश जैसे आकाशसे गिर पड़ा।

"और हाय, कमला भी न बच सकी भैया, हम लोग आग लगते ही दौड़े, पर अफ़सोस भीतरसे साँकल चढ़ी थी।"

"अच्छा" डूबतेसे स्वरमे रमेशने कहा।

पड़ौसकी बुढ़िया रामो दादी कह रही थी--"उसके तो रोने-चिल्लाने-की आवाज़ भी हमने नही सुनी बेटा!"

"हूँ"--रमेश जैसे भावीके किसी स्वप्नमे उलझ गया था!

जीवनका ज्ञान

बूढ़ेने युवकसे कहा—"तुम अभी बच्चे हो। तुम्हें क्या पता, काम कैसे होता है ? मै दस सालसे सभाका प्रधान हूँ। ओह, इतना विशाल अनुभव ! तुम्हारे हाथोंमें मैं सभाको छोड़ दूं, तो तीन दिनमें तुम इसे चौपट कर दो। यह मेरे जीवनमें नही हो सकता !"

पके पीले पत्तेने उगती कोंपलसे कहा—"मैं दुनियाका रास-रंग बहुत देख चुका। अब तुम यहाँ आरामसे रहो, खिलो और खेलो। मै अब नीचेकी हरी घासपर विश्राम करूँगा।"

युवक आस्तीन चढ़ाये कड़वी आँखोंसे बूढ़ेको देख रहा था।

कोंपल आँखके प्यालेमें प्यारका रसभरे नीचेकी ओर उडते पर्णको देख रही थी।

बूढ़ेके रजत-केशोंमें उसके श्वासोंकी संख्या लिखी है।

पर्णकी पीतिमामें जीवनकी बीती सन्ध्याओंका इतिहास लिखा है।

जीवनको किसने ठीक समझा ?

सुखनन्दन माली

धरतीपर चर्चा थी कि पारिजातका फूल केवल स्वर्गमे ही खिलता है, पर सुखनन्दन मालीको धुन थी कि वह धरतीपर भी खिले।

अपनी बुद्धिपर भरोसा किये वह बरसों प्रयोग करता रहा। उसके प्रयोगसे वृक्ष-शास्त्रमें उन्नति हुई, उसे यश मिला, पर उसकी प्यास तो और भी भड़क उठी—धरती पर पारिजात कैसे खिले ?

किसीने कहा—कैलाशके योगियोंकी कृपासे यह सम्भव है।

सुखनन्दन कैलाश पहुँच गया और बरसों वह योगियोंकी सेवामे लगा रहा। सेवासे प्रसन्न हो, एक दिन किसी योगीने उसे पारिजातका एक बीज उपहारमें दिया और उसकी विधि भी बताई।

सुखनन्दनकी तपस्याका यह बीज ही वरदान था। वह उसे सम्भाले अपने घर लौट आया और धरती कमाने लगा। बुढापेमें जन्मे पुत्रके संस्कारकी तरह, उमंगोंसे भर, उसने वह बीज धरतीकी गोदमें एक दिन रख दिया और जिस दिन उसका पहला अकुर फूटा, वह हर्षसे झूम-झूम गया।

रात दिन अब सुखनन्दन उस वृक्षमे डूबा रहता। सचाई यह कि यह वृक्ष ही उसका ससार था !

यों दस वर्ष बीत गये । दस वर्ष पहले सुखनन्दनकी कुटियाके सामने उगा वह अंकुर अब एक भरा-पूरा वृक्ष था। ऋतुएँ आती और चली जातीं, पर उस वृक्ष पर फूल लगनेका कोई असर दिखाई न देता।

सुखनन्दन नये-नये खाद देता, नये-नये ढंगोंसे उसे बल पहुँचाता। नौलाता-सीचता और देवी-देवताओंकी नई-नई मनौतियाँ मनाता रहा, पर उसपर कभी फूलकी एक फुनगी भी न फूटी।

और कई वर्ष बीत गये। एक दिन घूमते हुए एक तपस्वी उधर आ निकले। सुखनन्दनने अपनी पीड़ा उनसे कही। वृक्षको योगदृष्टिसे देखकर तपस्वी बोले—"सुखनन्दन, यह वृक्ष तो बाँझ है। तुम्हारी साधनासे यह लहलहा सकता है, फूल नहीं सकता!"

तपस्वी चले गये, सुखनन्दन कुटियाके सामने बैठा रह गया। उसके रोम-रोममें एक कराह थी—हाय, मैंने अपना सारा जीवन एक बाँझ पेड़की सेवामें ही बिता दिया!

मैं जान गया !

मै उस दिन अपने एक मित्रके घर गया, तो देखा वे और उनकी पत्नी आपसमें लड़ रहे थे। मै अपने मित्रको एक मिठाई मानता था, कोई दस वर्षोंसे हमारा परस्पर सम्बन्ध था, पर आज तो वे कड़वे ज़हर हो रहे थे।

मैं दोनोंको शान्तकर, मन बदलनेके लिए अपने साथ घूमने ले चला। मै उन दोनोंसे इधर-उधरकी बाते करता, उन्हें हँसाता-बहलाता जा रहा था, पर मेरे भीतर एक जिज्ञासा मचल रही थी—मेरे मित्रके स्वभावकी मिठासमें यह नीम कहाँसे आगया ?

तभी रास्तेमें आगई एक घड़ीकी दूकान। हम तीनों उसमें चले गये—मुझे अपनी घड़ीके बारेमें कुछ पूछना था।

मित्रकी पत्नीके हाथमें सोनेकी घड़ी थी और उसमें एक सुकुमार फीता, पर उन्होंने दूकानदारसे एक नया फीता खरीदकर अपनी घड़ीमें फिट करा लिया। यह नया फीता बहुत घटिया, मर्दाना और उस घड़ीके सौन्दर्यको दबा देनेवाला था।

हम तीनों फिर चल पड़े, पर मैं अब यह जान चुका था कि मेरे मित्रके स्वभावकी मिठासमें यह नीम कहाँसे आ गया !

भिखारी

(१)

उसका नाम था नानक और काम था भीख माँगना। बम्बईकी एक प्रसिद्ध सड़कके मोड़पर बैठा, वह सुबहसे शाम तक भीख माँगा करता था। उसकी सूरतमे सौन्दर्य न था, पर गलेमें एक लोच थी—हृदयको हिला देनेवाला एक दर्द था! वह बड़ा मनुष्य-पारखी था। सूरत देखकर मनुष्यके हृदयको पहचान लेता था।

मोटरवालोसे उसे चिढ़ थी। उन्हें वह पशु कहा करता था। गाड़ी वालोंसे उसे आशा न थी—वह उनकी ओर देखता भी न था। पैदल चलनेवाले सीधे-सादे आदमियो तक ही उसकी दुनियाका दायरा था।

मोड़पर आते ही वह आदमीकी ओर घूरकर देखता और देखकर चुप रह जाता, पर उसका हृदय यदि गवाही दे देता, तो उसे देखते ही वह एक आवाज़ लगाता—"भूखेको कुछ दोगे बाबा!" और उठकर उसके पीछे हो लेता। उसके माँगनेका ढंग इतना करुण एवं प्रभाव-पूर्ण था कि वह अपने स्थानसे उठकर फिर पैसा लेकर ही लौटता। उसके ५५ वर्षके भिखारी-जीवनमे उसे एकबार भी निराशाका साक्षात् न हुआ था। सचमुच उसका आकृति-ज्ञान कमालका था।

प्रातःकाल ६ बजे आकर वह अपनी जगह पर बैठता, शामको ६ बजे वहाँसे उठता और अपनी गुदड़ीकी जेबमे हाथ डालकर, भीतर ही भीतर दिनभरकी कमाईका जोड़ लगाता हुआ किसी ओरको चला जाता।

उसकी यही दैनिक दिनचर्या थी!

(२)

उस दिन बिहारके भूकम्पका भयकर समाचार पा, सारा देश सिहर उठा था। जगह-जगह सहायता-समितियोका निर्माण हुआ था। बम्बई वही क्यो पीछे रहता भला !

स्वयसेवको और कार्यकर्ताओकी टोलियाँ धन एकत्र करने निकल पड़ी थी। दानियोंने उदारता-पूर्वक अपनी थैलियोंके मुह खोल दिये थे और धनकी वर्षा-सी होने लगी थी।

ऐसी ही एक टोली उस मोड़की ओर भी आ निकली। भिखारी उसे देख कर खड़ा हो गया। मन ही मन उसने कहा—"क्या कांग्रेसका वह झगड़ा फिर खड़ा हो गया है ?"

उसे कांग्रेसवालोंसे प्रेम न था। चिढ़ भी नही। वह उनसे उदासीन था। उसका खयाल था कि ये भिखारीको पैसा न देकर उपेक्षा-पूर्ण उपदेश दिया करते है। फिर भी वह कौतूहल-वश कुछ आगे बढ़ गया। "यह क्या हो रहा है भाई ?"

"चन्दा !"

"कांग्रेसके लिए ?"

"नही !"

"फिर ?"

"बिहारमें भूचाल से हजारो आदमी मरगये और सैकड़ों गाँव उजड़ गये है।"

"अच्छा !"

कुछ सोचकर उसने कहा—"फिर तुम मुझसे क्यों नही माँगते कुछ चन्दा ?"

युवकोंके अट्टहाससे वातावरण गूंज उठा।

भिखारी झेंप-सा गया। उसका आत्माभिमान तड़फ उठा।

उसने अपना हाथ जेबमें डाला, पूरे दिनकी कमाई मुट्ठीमें ली और उसे सड़कपर एक झटकेके साथ बखेरकर, वह एक ओरको दौड़ गया ।

स्वयंसेवकोंने गिने सवा आठ आने थे !

चौरस्ते पर बिखरी हुई भिखारीकी यह निधि देख कर बम्बईकी ऊँची अट्टालिकाएँ शर्मसे नीचे देखने लगी । कुबेर अप्रतिभ हो गया ।

भिखारीने अपने पास एक पैसा भी न रक्खा था । उसे दूसरे दिन शाम तकभूखे रहना पड़ा, पर वह प्रसन्न था ।

क, कि, की,

क, कि, की; तीनों कहाँ जन्मे, कहाँ पले, पर घटनाओंके मायाचक्रपर कुछ ऐसे चढ़े कि जीवनके मध्याह्नमे एक स्थानपर आ मिले।

तीनों एक ही जीवनके अंग। सुखमें एक, दुखमें एक, पर तीनों एक-रस नही, क्योंकि तीनमें दोका दृष्टिकोण यह कि टाँक नही, जुफ़्त। और तीनमें दो जुफ़्त असम्भव!

तीनों एक ही जीवनके अंग; सुखमें एक, दुखमें एक; तीनों दुखी। सुख है सन्तुलन; यहाँ घोर खींचातानी! फिर सुख कहाँ? शान्ति कहाँ?

क कहता है—तुम दोनों ठीक रहे, मै मिट गया।

कि की सम्मति है—तुम दोनोंका क्या बिगड़ा, मेरा तो सर्वनाश हो गया!

की की घोषणा है—तुम तो फिर भी अपने ठिकाने हो, मै तो कहीका न रहा।

तीनों अपनी तरफ़ देखते है, अपनी हानिका लेखा जोड़ते है, कोई दूसरेकी नहीं सोचता।

लौटनेके मार्ग तीनोंके खुले हैं, तीनों स्वतन्त्र भी है, पर लौट नही पाते।

क्या बहुत आगे बढ़ आये हैं, इसलिए?

या लौटनेका मन ही किसीका नहीं होता?

क शायद ममताके कारण और कि की अपनी प्रतिस्पर्धाके कारण!

तीनों सोच रहे है, समझ रहे है, मन-मस्तिष्क तीनोंके जागृत हैं, पर तीनों ही अपनेको बदल नहीं पाते!

तीनों जीवनकी विडम्बना सह रहे हैं, नष्ट हो रहे हैं, घुल रहे हैं, पर घुलमिल नहीं पाते। तीनों एक ही जीवनके अंग, सुखमें एक, दुखमें एक, पर तीनों एकरस नहीं, क्योंकि तीनमें दोका दृष्टिकोण यह कि टाँक नहीं जुफ़्त और तीन में दो जुफ़्त असम्भव!

दो साधक

राजीव और सुलोचन दोनो युवक साथी मनुष्यताके उपासक है और यथासम्भव अपना समय मनुष्यताकी सेवामे लगाते रहते है।

उस दिन दोनों किसी दूर देहातसे सेवाकार्य करके लौट रहे थे कि सहसा राजीवने पूछा—"सुलोचन भाई, तुम्हे सेवा-साधनाका कौन-सा स्वरूप प्रिय है ?"

उत्तर मिला—"मै चाहता हूँ कि दूसरोंके आँसू पोछ सकूँ।"

"और तुम्हे ?" सुलोचनने भी पूछा।

उत्तर मिला—"मै चाहता हूँ कि दूसरोके आँसुओमे अपने आँसू मिला सकूँ।"

सुलोचनका मन न भरा। पूछा उसने—"दुखियोंका दुःख निवारण ही तो हमारी सेवा-साधना है राजीव ?"

"हाँ, ठीक है सुलोचन" राजीवने कहा—"किन्तु दुखियाको अपनेसे दूर मानकर उसके दुखका निवारण तो अहकार है; जैसे कोई धनी भूखेको टुकड़ा फेंक दे !"

"तो फिर सेवा-साधनाकी आत्मा कष्टमोचन नही है ?" एक नया प्रश्न उभरा।

उत्तर मिला—"ना, किसीका कष्टमोचन न साधकका काम है और न यह उसके वशमे ही है। साधककी सीमा तो यही है कि वह दूसरेमें भी अपनेको पाये।"

"तब ?"

"तब यही कि साधककी सीमा है समवेदना और यही हमारी सेवा-

साधनाकी आत्मा है। दूसरे शब्दोंमें हम दूसरेका दुख कितनी गहराईसे अपनेमें अनुभव करते है, यही हमारी कसौटी है।"

"पर बिना साधन और व्यवहारके कोरी समवेदनाका क्या उपयोग है?"

"समवेदना कभी कोरी नही होती राजीव, समवेदनासे विकल होकर कुष्ठरोगीके घावोंपर एक फूंक मारनेका, उस अस्पतालके निर्माणसे अधिक महत्त्व है, जो अपने नामपर बनाया गया हो!"

राजीव अब पूरी तरह शान्त था। उसने कहा—"ठीक है तुम्हारी बात; आँसू ही मनुष्यताकी चरम परिभाषा है।"

वे दोनों

भयानक जंगलमें वे दोनों मिले--अचानक और खोये-से।

पुरुषने कहा--"आओ, अब हम साथ रहें।"

नारीने सिर झुका लिया। पुरुषने उसका कोमल हाथ, अपने बलिष्ठ बाहुमें थाम लिया।

पुरुषने कहा--"मै कठोर हूँ। आदेश मेरा स्वभाव है और उसके विरुद्ध कुछ सुननेकी मुझे आदत नही। क्या तुम मेरे साथ रह सकोगी?"

नारीने कहा--"मै कोमल हूँ। जीवनमें उफान लाती भी हूँ और उसे अपनेमें समाती भी हूँ। मै सदा एक ही मुद्रामें स्थिर रहनेवाला पर्वत-का शिखर नही। लहरोंमें इठलानेवाली सरिता हूँ।"

पुरुषने कहा--"तब तुममें मुझे अपना सेवक बनाकर रखनेकी क्षमता है।"

नारीने वन्दना की। पुरुषने उसे भुजपाशमें बांध लिया।

दो मेमने !

देवदूत उस दिन दुनियाके बीचसे गुज़र रहा था।

मार्गमें उसे दो मेमने मिले। एक स्वस्थ, एक सुन्दर। ममताके सरल उच्छ्वासमे दोनोंको देवदूतने अपनी गोदमे उठा लिया और लाड़से चुमकारा।

"कितने अच्छे है ये !" उसने सोचा

"क्यों ये धरतीकी धूलमें लोटते रहें—मै इन्हे अपनी दिव्यसाधनासे स्वर्गकी शक्ति बनाऊँगा।" उसके भीतर निर्माणकी भावना जाग उठी।

मेमनोंको भी देवदूत बहुत अच्छा लगा। उन्हे ऐसी ममता शायद कभी किसीसे न मिली थी। उन्होने उसे खूब सूँघा, चाटा और दुलराया। उन्होने सोचा—"हम अब इसके ही साथ खेला करेगे।"

वह देवदूत था !

वे मेमने थे !

× × ×

देवदूत मेमनोंको स्वर्गकी शक्ति बनानेमे लग गया। मेमने देवदूतको खिलौना मान, जीवनमें खेल चले।

बरसों बाद, एक दिन दोनोंने अपने-अपने कामका हिसाब जाँचा !

देवदूत दुखी हुआ कि वे मेमने आज भी मेमने ही है। उसकी साधना उन्हें स्वर्गकी शक्ति नही बना पाई।

मेमने झल्लाए कि यह खिलौना नही है, कुछ और है।

देवदूत उठा और स्वर्गकी ओर बढ़ चला।

मेमने फिर धरतीकी धूलमें लोटकर मिमियाने लगे।

आरम्भ

सृष्टिके आरम्भकी बात है।

उस दिन पुरुषका मन कुछ खिन्न था। हरेभरे पहाड़ों, सरिताकी लहरों, पक्षियोंके कलरवों एवं वनके वैभवोंमें वह उलझ न रहा था। आज वह अपनी ही दृष्टिमें अपूर्ण था। उसका हृदय कुछ माँग रहा था, जिसे वह स्वयं भी न जानता था। वह अपने स्थानसे उठ चला।

उसने देखा, सरिताके तटपर एक नारी बैठी है। रूपकी सजीव प्रतिमा, पर चिन्तामें डूबी। अनमने भावसे पुरुषने कहा—"क्या सोच रही हो?"

"यह सरिता इतनी आकुलतासे दौड़ी कहाँ जा रही है? क्या वहाँ इसकी कोई प्रतीक्षा कर रहा है?"

इस प्रश्नमें नारीके हृदयकी माँग थी। दोनोंने एक दूसरेको देखा और दोनों साथ-साथ एक वृक्षके नीचे जा बैठे।

वृक्षने पुष्पवर्षा की। पक्षियोंने मंगलगान गाया।

भोजन या शत्रु ?

पार्कमें सड़कोंके किनारे, दोनों ओर विभिन्न वृक्षोंकी पंक्तियाँ हैं और उनके पास-पास फूलोंकी क्यारियाँ। इन्हें सींचनेके लिए उभरी हुई नालियाँ हैं, जिनमें टचूबवैलसे पानी आता है।

रात हो गई है, पर बिजलीकी मामूली रोशनी पार्कमें है। एक सफेद, बहुत सुन्दर बिल्ली नालीमें चली आ रही है। पैरोंमें सावधानी, कानोंमें सतर्कता—कभी-कभी इसी नालीमें उसे रसगुल्ला-सा मीठा कोई चूहा मिल जाता है।

एकदम वह रुकी—उससे लगभग एक फुट, वह नालीकी बाईं पटरी-पर यह काला-काला क्या है, कोई दो अढाई इंच उभरा हुआ ? रोम-रोमकी शक्ति आँखोंमें समेटे उसने देखा।

चूहा ! उसका रोम-रोम पुलक उठा। तनी हुई देह जरा ढीली पड़ गई और उसने अपनी जीभ होठोंपर फेरी, पर न कम्प, न भागनेका प्रयत्न, एकदम स्थिर, यह कैसा चूहा है ? वह फिर तन गई और कुछ ही क्षणोंमें फिर ढीली हो चली।

"ठीक, मेरी आँखोंको धोखा; जैसे मैं आपको बिना पहचाने यों ही आगे निकल जाऊँगी ! जाने चूहोंके कितने नाटक मैं देख चुकी—तुम्हारी जातिकी सब बदमाशियोंसे परिचित हूँ मैं ! अच्छा, आओ, अब तुम्हारा नाश्ता किया जाये।"

उसने यह सब सोचा और एक क़दम बढ़ी। बढ़ी कि एकदम सन्न ! अगर यह साँप हो ?

याद आ गया उसे। उस दिन उसकी माने चूहा समझकर साँपको छेड़ दिया। पलभरमें वह उसकी पसलियोंको लिपट गया और तब

उतरा, जब वह मिट्टीका ढेर हो गई। माकी कराहमें कितना दर्द था और उसके मुँहसे नीले-नीले कैसे झाग निकल रहे थे !

कई मिनट वह तनी खड़ी रही। समयने उसे साहस दिया। वह एक पग आगे बढ़ी—"यह साँप नहीं है, चूहा है, ओह, कितना धूर्त !" एक पग उसने और बढ़ाया, पूरी तरह उसे देखा और झपाटेके साथ उसपर पंजा चलाया। उसके पंजेको कुछ लिपट गया—गीला-गीला, ठण्डा-ठण्डा।

पलक मारते वह चारों पैर समेटे, धनुष-सी उछली और अपनी जगह आ गई और अपनी जगह आई कि एकदम सीधी तनकर खड़ी हो गई। पैर आगे-पीछे, पूँछ उठी हुई, गर्दन जरा झुकाये, सिर सधा और दायाँ पंजा नये आक्रमणके लिए प्रस्तुत। शत्रुकी ओरसे, पर उसे कोई चैलेंज न मिला।

उसने देखा—शत्रुकी ऊँचाई पंजेके पहले ही वारमें बिखरकर आधी रह गई है। कुछ क्षण वह इसी मुद्रामें ठहरी, पर उसका दिमाग़ अपना काम करता रहा। अब वह धीरे-धीरे आगे बढ़ी—शत्रुकी एकदम सीध तक !

'क्या है यह ?' पंजेको सूँघकर वह आश्वासन पा गई थी। फिर भी एक बार उसने सोचा और बहुत सावधानीसे, अपना दाहिना पंजा साधे, सिर बढ़ाकर, उसने उसे सूँघ लिया। शरीरका तनाव ढीला पड़ गया और अपने पंजेकी चार-पाँच चोटोंसे उसने उसे ज़मीनमें मिला दिया।

वह गीली मिट्टीका एक ढेला था !

पेंसिल-स्कैच

सुमतिने दसवींमें बी० ए० तक विश्वविद्यालयमें किसीको अपनेसे आगे न जाने दिया--वही सर्वप्रथम रहती आई और एम० ए० के पहले सालमें जितने नम्बर उसने पाये, उन्होंने आखरी सालमें उसे पछाड़नेकी होड़ करनेवालोंके हौसले पस्त कर दिये।

पढ़नेमें ही नहीं, बोलनेमें, गानेमें और मिलने-जुलनेमें वह विश्व-विद्यालयका चांद थी।

वह अपने प्रान्तसे दूर, एक दूसरे प्रान्तमें अध्ययन कर रही थी और कभी छुट्टियों में भी अपने घर न जाती थी। यों ही उड़ती-सी चर्चा थी कि वहाँ यौवनके आरम्भमें ही उसके मनपर एक चोट पड़ी थी।

एम० ए० का दूसरा वर्ष आरम्भ होते-होते चर्चा उड़ी कि उसके सह-पाठी प्रदीपके साथ उसके विवाहकी बात पक्की हो गई है। प्रदीप तो इस बातको साथियोंमें साफ़ कहता ही था, पर सुमति भी इसका प्रतिवाद न करती थी।

अगस्त आते-आते प्रदीपने एक धनी पुरुषकी कन्यासे अचानक विवाह कर लिया और पत्नीके साथ अध्ययन करने विदेश चला गया।

सुमतिने भी तभी विश्वविद्यालय छोड़ दिया और जाने अचानक वह कहाँ चली गई। दिसम्बरमें उसके विवाहका समाचार साथियोंने सुना और जनवरीमें वह एक दिन विश्वविद्यालयमें आई, तो उसके पति भी साथ थे।

साथियोंने आश्चर्यसे देखा कि वे एक वयोवृद्ध सज्जन हैं। वे सब एक अलग कमरेमें उसे घेरकर बैठ गये और आग्रहपूर्वक इस सम्बन्धमें नये-नये प्रश्न पूछने लगे।

सुमतिने वहीं बैठे-बैठे एक कागजपर कुछ लकीरें खींची और वह साथियों की तरफ उसे फेंक कमरेसे बाहर अपने पतिके पास चली आई।

उस कागजपर बने पेंसिल स्कैचमें बाईं तरफ एक पुराना बडका पेड़ था और दाईं तरफ एक लडका गैसका गुब्बारा उड़ा रहा था!

झरना हँसा

झरना वहा जा रहा था, जाने किधर, जाने क्यो ?

गाँवकी एक किशोरी आई और उसने अपना कटोरा भर लिया।

तभी आई एक दुलहन; उसने अपना घड़ा भर लिया।

किशोरीने देखा—दुलहन घड़ा भरे सामने दूसरे तटपर खड़ी है।

तभी उसने देखा—उसके हाथमे एक छोटा-सा कटोरा ही है। घृणासे उसने झरनेकी ओर देखा और तब क्रोधसे कहा—"तुम बड़े बेइन्साफ हो जी !"

"क्यो, क्या बात है ?"

"देखते नही कि उस दुलहनको तो तुमने इतना पानी दिया कि वह बोझसे दबी चले और मुझे दिये ये चार चुल्लू !"

किशोरीने क्रोधसे जलकर अपने कटोरेका पानी धरतीपर फेक दिया।

झरना कुछ कहनेको ही था कि किशोरीके पास एक भिश्ती आकर खड़ा हो गया और उसने अपनी भारी मशक पानीसे भर ली !

झरनेके अट्टहाससे सारा दिग्मण्डल गूँज उठा।

किशोरी अपना खाली कटोरा लिये खड़ी थी, दुलहन घड़ा और भिश्ती मशक !

दो बहनें

रामो और गोविन्दी दो सगी बहनें है, पर दोनोके स्वभावमें दूरका अन्तर है।

रामोमे सादगीकी सरसता है, गोविन्दीमे दम्भकी चास है। रामोकी भोली आँखोमे प्यारका निर्मल रस है, गोविन्दीकी चपल आँखोंमे नमकीन बाँकपन।

इन्ही सरदियोंमें दोनोंकी शादी भजन और बलदेवासे हुई है। ये दोनों रेलवेके नये कुली है।

भजन जब अपना लाल कुरता और नीला साफा सम्भालकर आधीरात पंजाब मेलपर जानेको उठता है, तो रामो नीची आँखों धीमी आवाजमें कहती है—"अब क्या करोगे जाकर, दिनभर मेहनत करके थक जाते हो। रातदिन मारामार करके चुपड़ी खानेसे दिनभरकी राज़ी-खुशी मेहनतमें रूखी खाना कही अच्छा है।"

बलदेवा जब गोविन्दीकी सुरमीली आँखोंमें आँखें डालकर अँगड़ाई लेने लगता है, तो वह कहती है—"अँगड़ाइयाँ क्या तोड़ रहे हो, जाओ मेल देख आओ। खाली दिनकी कमाईमें क्या होता है। महीनेमें खा-पीकर चार रुपये बचेगे, तो एक धोती आ जायेगी!"

रामो और गोविन्दी सगी बहनें है, पर दोनोके स्वभावमें दूरका अन्तर है।

धन्नू भगत

उनका नाम तो है धनपत राय, पर सब उन्हें कहते है धन्नू भगत। अब तो यही नाम समझिये उनका।

तिमजिली हवेली है उनकी और लोग कहते है, लाखो रुपये उनके पास है।

कोई दूकान या व्यापार वे नही करते, फिर यह धन कहाँ से आया उनके पास, यह प्रश्न सदैव उनके चारों ओर घूमता रहा है। वे स्वयं भी अपनी सुख-समृद्धि स्वीकार करते है और हाथ जोड़कर सिर झुकाकर और आँखे आधी मून्दकर वे कहते है--सब सन्तोंकी कृपा है।

साधु सन्तोके वे सेवक है। लालनाथकी कुटियापर वे नित्य सुबह-शाम जाया करते है और वहाँ जो साधु महात्मा नये या पुराने है, सबकी आवश्यकताएँ पूछकर उन्हें पूरा किया करते है। किसीके लिए रजाई, किसीके लिए मिरजाई, किसीके लिए कौपीन तो किसीके लिए चादर उनके यहाँ बनती ही रहती है। दो-चार मूर्तियोंकी भोजन-भिक्षा तो उनके घरका नित्य-नियम ही हो गया है।

अपनी जानको जोखममें डालकर भी वे साधुओंका धन अपने यहाँ धरोहर रख लेते है और उसे किसी काममे लगा देते है। इससे वह धन बढ़ता ही रहता है।

बहीखातेमें भगतजी बड़े स्पष्ट है। जब यात्रा करते-करते कभी वे स्वामीजी फिर नगरमें आते है, तो भगतजी उन्हे बहीका वह पन्ना अवश्य दिखा देते है, जिसपर उनका हिसाब लिखा होता है। स्वामीजी स्वय देख लेते है कि मूलधन तो जमा है ही, उसका सूद या लाभ भी उसमें जमा है।

रुपया तो भगतजीके हाथमे होता नही, पर वे सन्तोका कष्ट भी नही देख सकते, इसलिए जाते समय १०–२०–५० रुपये अपने पाससे उन्हे दे देते है। इस तरह यह हिसाब तब तक चलता ही रहता है, जब तक स्वामीजी मुक्त होकर भगवान्मे लीन नही हो जाते।

भगतजी साधुओको ईश्वरका ही स्वरूप मानते है और प्राय. कहा करते है—सन्तोंकी कृपासे राईका पहाड हो जाना भी सम्भव है।

साधुसन्तोका उनमे अखण्ड विश्वास है। वे मानते है कि यदि हम हजार कोससे भी भगतजीको लिखते है, तो तुरन्त रुपया डाक-तारमे पहुँच जाता है। इस तरह भगतजीकी वहीमे सन्तोका धन ही नही, मन भी सुरक्षित है।

छोटे वृक्ष

विशाल वृक्षने, अपनी छायामे खड़े और अपनी महानताके प्रभावम सकुचे-झुके-से कुछ छोटे वृक्षोकी ओर देखकर कहा—"मैं कितना विराट हूँ और तुम कितने क्षुद्र !"

छोटे वृक्षोने कहा—"हाँ, हम छोटे है और तुम विराट हो, पर जानते हो, तुम हमारे कलेजेका रक्त पीकर ही इतने विराट हुए हो !"

बड़े वृक्षका दिमाग भन्ना उठा। घृणाके स्वरमे उसने कहा—"तुम्हें मैने अपनी छायामे आश्रय दे, सूर्यकी जलती धूप और बादलोंकी बौछारोसे सदा बचाया। इस उपकारके बदले, यह जीभ लपलपाते तुम्हें शर्म नही आती कृतघ्न !"

छोटे वृक्षोने कहा—"जी हाँ, आपके उपकारोसे हमारा रोम-रोम दबा हुआ है और हम आपके बहुत ही कृतज्ञ है कि आपने सदैव हमारा भोजन स्वयं ग्रहण कर, हमे अजीर्णका शिकार होनेसे बचाया !"

व्यंगके इस पैनेपर विशाल वृक्ष हुंकारकर रह गया।

क्यों रो रहे हो ?

कलाकारने न दिनको दिन समझा, न रातको रात। न उसे भोजनकी चिन्ता रही, न नींदका ज्ञान। वह यह भी भूल गया कि संसारमें कहीं कोई उसका सगा-सम्बन्धी भी है। अपनी छेनी और हथौड़ी लिये वह जुटा रहा एक पत्थर पर !

हाँ, संसारके लिए वह पत्थर ही था। एक पत्थर, जैसे और हजारों-लाखों, पर कलाकारकी तो दुनिया उसीमें समाई हुई थी।

यों ही चार-पाँच साल बीत गये। वह पत्थर अब एक प्रतिमामें बदल गया था, जिसके ओठों पर स्वर्गकी मुस्कान, जिसकी प्रकृतिमें पृथ्वीकी आत्माका प्रतिबिम्ब।

वह अपनी इस कृतिको देखकर स्वयं मुग्ध हो गया—जिस पहाड़ी गाँवमें वह रहता था, वहाँ उसकी कलाको परखनेवाला और था ही कौन ?

वह अपनी कलाको अन्तिम स्पर्श दे ही रहा था कि युद्ध छिड़ गया। एक विदेशी सत्ताने उसके देशके सम्मानको चुनौती दी थीं। कलाकारकी देशभक्ति जागृत थी; उसने छेनी रख दी और बन्दूक उठाली। अपनी प्रतिमा को अपने घरमें बन्द कर, वह सिपाहीका वेश साजे रणभूमिमें जा उतरा।

युद्धकी संघर्षमयी घड़ियोंमें जब ज़रा-सा भी विश्राम उसे मिलता, वह अपनी प्रतिमामें डूब जाता। उसके कन्धोंके उभारमें ज़रा-सी खराश दूर करनी है। वक्ष पर ज़रा-सा उभार देना है। बाहुकी मछलियोंमें एक हलका-सा गोलाव छूना है। मस्तकपर भी ज़रा चिकनाई लानी है। वह सोचता और सोचता ही रह जाता।

युद्ध समाप्त हुआ कि वह घरकी ओर लपका। सारी राह वह

अपनी प्रतिमाके ही ध्यानमें डूबा रहा। गाँव दीखा कि उसका दिल उछलने लगा।

गाँवके गोरे वह पहुँचा, तो उसे अपने कुछ पड़ौसी मिले।

एकने कहा—"भाई तुम्हारा घर तो इस बरसातमें गिर गया।"

दूसरेने कहा—"उसका सब सामान भी नष्ट हो गया।"

"और मेरी प्रतिमा ?" बिह्वल हो उसने पूछा।

"वह तुम्हारा पत्थर ?" कई कण्ठ एक साथ खुले।

"हाँ, वह तो सुरक्षित है ?"

"हाँ, वह तो सुरक्षित है।"

कलाकारका काला पड़ गया चेहरा फिरसे चमक उठा।

"तुम्हारा वह पत्थर बड़े कामका है भैया !" तभी एक पड़ौसीने कहा।

कलाकार खिल गया—"अच्छा, अब तुम लोग भी उसका मूल्य समझ गये ?"

"हाँ भैया, मैंने उसे उठाकर कुएंपर डाल दिया था। अब गाँव भरकी स्त्रियाँ उसपर कपड़े धोया करती है।"

दूसरा पड़ौसी उत्साहसे बोला—"सारे गाँवको उससे आराम है। पहले अपने गँडासे और खुरपे तेज़ करनेको हमें नदीके पुलपर जाना पड़ता था। अब हम उन्हे तुम्हारे पत्थरपर रगड़ा देकर ही पैना लेते हैं। बहुत ही अच्छा पत्थर है तुम्हारा !"

तीसरा बोला—"भैया, अब हम तुम्हें नही देंगे उसे; अब तो वह हमारा हो गया है।"

कलाकारकी आँखोंसे तभी दो बड़ी-बड़ी बून्दें टपक पडीं।

पड़ौसी पूछ रहे थे—"क्यौ भैया, तुम रो क्यों रहे हो ?"

दिनचर्या

सेठ चमनलाल भक्त आदमी है। माथेपर चन्दन और गलेमें माला; यह जैसे उनका ट्रेडमार्क है। मिलते ही सबको हाथ जोड़ते है और मुस्कराकर कहते है—जय सियाराम जय सियाराम। किसीके घर सुख हो, या दुख; दौड़कर जाते है और हज़ार काम हो, दो घड़ी बैठे बिना नही आते। उनके स्वभावने उनका नामकरण ही भक्त कर दिया है।

सारे दिन भक्तजी काममे लगे रहते है। बुढापेमे भी कितना पुरुषार्थ है उनमें!

सुबह उठते ही जंगलमे चीटियाँ जिमाने जाते है। वहाँसे आकर अपने दीवानजीको नई नालिशोंका मसविदा लिखाते है। रोज बेचारोंको दो-चार नालिशें करनी ही पड़ती हैं। आजकल कोई लेकर फिर देना ही नही चाहता। भक्तजी हमेशा सौ देकर एक सौ पचास लिखा लेते है। न लिखायें, तो क्या करे; खर्चा बहुत पड़ता है और भागते-भागते कारिन्दोंकी चप्पले घिस जाती है।

फिर अपनी गद्दीपर बैठे राम नाम जपते रहते है।

तीसरे पहर गौशालामे जाते हैं और अपने सामने गौवोंको घास-दाना खिलवाते है। कर्मचारी बड़े बेईमान है। वे कम्बख्त गौमाताके भागमेंसे भी हड़पना चाहते है।

गौशालासे लौटकर भक्तजी मन्दिरमे पूजा-कीर्तन करते है और तब भोजन कर अपनी भीतरकी बैठकमे जा बैठते है। वहाँ शहरके कसाइयोंसे लेनदेनकी बाते करते है। इन बेचारोंको भक्तजी रुपया उधार न

दे, तो बेचारोंके बालबच्चे भूखों मर जाएँ। भक्तजीकी दया समदर्शी है।

बैठकसे उठकर वे अपने पलंगपर जा लेटते हैं और राम-नाम जपते हुए ही सो जाते हैं। सेठ चमनलाल भक्त आदमी हैं। लोग दूरसे देखते ही उन्हें हाथ जोड़ते हैं।

लारी और बैलगाड़ी

"पों-पों, ऐ ! हटो आगेसे। कच्चेमे चलो। तारकूलकी यह काली सड़क तुम्हारे लिये नही है !"

अभिमानके स्वरमें लारीने बैलगाड़ीसे कहा। नम्रतासे बैलगाड़ीने उत्तर दिया--"बहन, यह तो काफ़ी राह पड़ी है, तुम ही ज़रा बचकर निकल जाओ।"

लारीका क्रोध भड़क उठा। डपटकर उसने कहा--"जवाब देती है बदतमीज़, हट आगेसे मुर्दे बैलवाली !"

व्यंगकी मुद्रामे बैलगाड़ीने कहा--"हाँ, हाँ, तुम बड़ी रूपसी हो बहन, पर किया क्या जाये; आख़ीर तुम लोहा ही हो और मेरे इन मुर्दे बैलोमे धड़कता जीवन है।"

लारीके अभिमानको यह गहरी ठेस लगी। क्रुद्ध सर्पिणीकी भाँति वह फुकारी--'पों, पों !'

बैलगाड़ीने प्यारसे कहा--"बहन, तुम दुखी न हो। लो, मैं कच्चीपर ही चल लूँगी। तुम खुशीसे इकले ही पक्कीपर चलो। कुछ भी हो, तुम परदेशी हो और आजकल मेरे देशमें मेहमान हो। मेरे लिए यह उचित नहीं है कि मै तुम्हारा मन मैला होने दूं, पर बड़ी बहनके नाते मेरी इतनी बात तुम भी मान लो कि मेहमानके लिये भी यह उचित नही है कि वह मेज़बानके घरपर क़ब्ज़ा कर ले और उसे डाटे !"

अत्यन्त निर्लज्जतासे लारीने कहा--"तुम्हारी जाति मूर्ख है, जो इसे अनुचित समझती है। हमारी जातिमे तो यह नीति पूर्ण वीरता ही समझी जाती है।"

बैलगाड़ीपर धूल उड़ाती लारी आगे निकल गई। इसी समय बैलगाड़ीकी घण्टी टुनटुना उठी। यह शायद उसके हृदयका निश्वास था !

मनुष्य

शिष्यने श्रद्धासे नम्र हो प्रश्न किया--
"मनुष्य क्या है ?"

आचार्यने प्रसन्न हो, उत्तर दिया—"मनुष्य मिट्टीका एक लौन्दा है, जो जाने कब कहाँ भुर जाये !"

शिष्यने उत्सुक हो पूछा--"फिर राम और कृष्ण, बुद्ध और महावीर, ईसा और गान्धीका इतना महत्व क्यो है ?"

आचार्यने कहा--"प्रेमकी व्यथाने उन्हें मनुष्यकी मरतासे देवताके अमरत्वमें अधिष्ठित कर दिया है, इसलिए !"

शिष्यने कहा--"समझा आचार्य, प्रेमकी व्यथामे अणुको विराट करनेकी क्षमता है।"

आदत

तालाबमें कछवा रहता था और उसके किनारेपर बिच्छू। दोनों रोज़ आपसमें गपशप किया करते।

"मैं तो तुम्हारे घर रोज आता हूँ, पर भाई, तुम मेरे घर कभी नहीं चलते। चलो न आज!"

कछवेने मुहब्बतमें डूबकर बिच्छूसे कहा और उसे सम्भालकर अपनी कमरपर बैठा लिया।

कछवा अभी कुछ दूर ही तैरा था कि उसका शरीर भयंकर पीड़ासे काँप उठा।

"यह क्या कर रहे हो भाई?" घबराकर कछवेने बिच्छूसे पूछा, तो उत्तर मिला--"कुछ नहीं, कुछ नहीं, योंही ज़रा डंक लगाया है।"

"पर मैं तो तुम्हारा मित्र हूँ।" कछवेने कातर हो कहा।

"हाँ, तुम मेरे मित्र तो हो ही, पर मित्र माफ करना, मैं अपनी आदतसे मजबूर हूँ।" बिच्छूने उत्तर दिया।

बिच्छूको कमरपर लिये कछवा तालाबके तलमें घुस चला, तो घबराकर बिच्छूने कहा--"मित्र, ऊपर चलो, यहाँ तो मेरा दम घुट रहा है।"

मुस्कराकर कछवेने कहा--"माफ़ करना भाई, मैं भी तो अपनी आदतसे मजबूर हूँ!"

बन्दूक़

फ़ौजकी एक टुकडी चली जा रही थी—क्विकमार्च ! तीन साथियोंने उसे देखा।

पहलेने कहा—कितनी शानदार यूनीफार्म है ;

दूसरेने कहा—हमारे सिपाही कितने मजबूत सुन्दर है।

तीसरेने कहा—आदमीके कन्धेपर आदमीकी मौत सवार है, जिसे हम बन्दूक़ कहते है।

वृद्ध और युवक

वृद्धने कहा—"सयम ही शक्तिका श्रोत है !"

वृद्धके स्वरमे अनुभवकी स्थिरता थी, उपदेशका गाम्भीर्य था।

युवकने कहा—"बिजार अपने प्रदेशमें गर्भाधानका एक मात्र पुरोहित है और वृषभ संयमकी साकार प्रतिमा, पर दोनोंमे शक्तिका अग्रदूत है बिजार और बैल उसे देखकर काँपा करता है !"

युवकके स्वरमें तरुणाईका चांचल्य इठला रहा था।

"कुछ भी हो, शक्तिका श्रोत तो सयम ही है !" वृद्धके मुखपर झल्लाहट थी। प्रतिवाद उसके लिए असह्य है। वह चाहता है नम्र आज्ञापालन।

"संयम जीवनका महान तत्व है, पर शक्तिका श्रोत है स्वतन्त्रता !" युवकके मुखपर शोखी थी। प्रतिवाद यौवनका स्वभाव है।

रण-दुन्दुभि

विश्वकी शान्ति-परिषदमे ससारके प्रमुख विचारकोंने युद्धका विरोध किया।

अस्त्रोंके निर्माता चौके।

फौजी अफसरोंको अपने भविष्यकी चिन्ता हुई।

रणदुन्दुभिने कहा—"जब तक मेरा अस्तित्व है, युद्ध होते रहेंगे; तुम कुछ चिन्ता न करो।"

"और ये विचारक ?" दोनोने पूछा

"ये विचारक ?" रणदुन्दुभि हँसी—"इनकी आवाज़ मेरी पहली ही गूँजमे इस तरह खो जायेगी, जैसे बादलकी गड़गड़ाहटमें झींगुरोकी सीटी खो जाती है।"

कारखानोंकी चिमनियाँ निश्चिन्त हो धुवाँ उगलने लगी और फौजी फिर अपनी परेडमे जुट गये।

सामने और पीछे

सेठ शम्भुनाथ नगरके बहुत ही प्रतिष्ठित नागरिक थे।

वे अपने बैंकके सर्वेसर्वा, रामलीला कमेटीके सभापति और म्यूनिसिपल बोर्डके चेयरमैन थे।

उनकी पत्नीका उस दिन देहान्त हो गया, तो सारे शहरमें जैसे शोक छा गया और कोई दस हज़ार आदमी श्मसान-यात्रामें सम्मिलित हुए।

सबने कहा—कितना मान करते है लोग सेठ शम्भुनाथका !

उस दिन अचानक सेठ शम्भुनाथका हार्टफेल हो गया।

उनके मित्रोंमें शोक छा गया और कोई पाँच सौ आदमी उनकी श्मसान-यात्रामें साथ गये।

शेष लोग इस चर्चामें व्यस्त थे कि अब चेयरमैन कौन हो ?

उन्नति

१९३०

रामू मिलमे मज़दूर है। काम करता है, वेतन पाता है। वेतन-जीनेभरका साधन; जीना--खीचतानकर पहली तारीखसे तीस तारीख-तक साँस लेना !

रामूकी पसलीमे दर्द है--महीनों हो गये। वैद्यजीकी पुड़िया और हकीमजीके नुसखेसे फ़ायदा नही हुआ।

रणजीतने उससे कहा-"डाक्टर रामनाथको दिखा ले एक बार भैया !"

रामूने साँस लेकर कहा--"दिखा तो लूँ, पर पाँच रुपये कहाँसे लाऊँ उसकी फ़ीस ? बिना फ़ीस पहले लिये, तो वह बात भी नही करता--अपनी मशीन तो धड़कन पर क्या धरेगा ?

"तो क्या पाँच रुपयेके लिए जान दे देगा ?" रणजीतने पूछा।

"पाँच रुपये ? अरे भाई, मजबूरीमे पाँच पैसे भी कुबेरका खजाना है !"

१९४०

रामू मिलमे मज़दूर है। काम करता है, वेतन पाता है। वेतन-जीनेका साधन; जीना पहली तारीखसे तीस तारीख तक गुज़ारा कर लेना !

पत्नीको फेफड़ेकी तकलीफ है--महीनों हो गये, वैद्यजीकी पुड़िया और हकीमजीके नुसखेसे फायदा नही हुआ। मिलका डाक्टर भी बराबर दवा दे ही रहा है, पर पता नही, उसकी दवाओंमें क्या भुस भरा है कि देहको लगती ही नहीं।

रणजीतने कहा--"डाक्टर रामनाथको दिखाले एक बार भैया !"

रामूने गम्भीर होकर कहा--"बच्चोंका दूध महीने भर बन्द करके पिछले महीने पाँच रुपये जोड़े थे और रामनाथको दिखाने गया था। क्या बताऊँ रणजीत, दस बरसमें वहाँकी दुनियाँ ही बदल गई। पहले किरायेका मकान था, अब अपनी दुमंज़िली कोठी है। बाहर नई मोटर खड़ी थी--चमाचम कि मुँह देख लो!"

रामू चुप हो गया, तो रणजीतने पूछा--"क्या बताया उसने भाभी को?"

"बताया तेरा और मेरा सिर!" रामूने कहा

"अरे भाई, जब डाक्टरके घर गया था, तो कुछ तो कहा ही होगा उसने!" रणजीतने पूछा।

"कहता, तो तब, जब वो तेरी भाभीकी नबज पकड़ता। अब बाहर बरामदेमें एक और बाबू बैठने लगा है। उसने कहा--"लाओ फीस," तो मैंने पाँच रुपये उसकी मेज़पर धर दिये। बोला--"अब डाक्टर साहबकी फीस दस रुपये है।" मैंने उसे अपनी ग़रीबीकी बात कही, तो बोला--"गरीब है, तो यहाँ क्यों आया--सरकारी अस्पतालमें जा!" क्या करता, अपने घर चला आया।"

१९५०

रामू मिलमें मजदूर है। काम करता है, वेतन पाता है। वेतनः जीनेका सहारा; जीना-पहली तारीखसे तीस तारीखतककी जरूरते पूरी करना। वेतन, महँगाई और भत्ता; तीनोके रुपये रामूकी मुट्ठीमें आते है, तो एक बार तो वह राजा हो जाता है।

रामूका छोटा लड़का बीमार है--महीनो हो गये! वैद्यजीकी पुड़िया और हकीमजीके नुसखेसे फायदा नहीं हुआ। मिलका डाक्टर भी बराबर दवा दे ही रहा है, पर चार दिन उभारा आता है, तो एक दिन में चुस जाता है। पता नही, क्या भूमिया रूठ रही है।

रणजीतने कहा––"मुन्ना हाथो आया जा रहा है, इसे डा० रामनाथको क्यो नही दिखा लेता रामू ?"

रामूको ज़ोरसे हँसी आगई। बोला––"गया तो था इसे लेकर एक दिन। बाहर वाला बाबू बोला––अब डाक्टरकी फीस बारह रुपये हो गई है, दो रुपये और निकालो ! मुझे उसी दिन बोनसके तीस रुपये मिले थे, मैने मनमे कहा––अबे, अकडता क्यो है ले दो रुपये और चाँदीके दो सिक्के टकसे उसकी मेजपर रख दिये।

नम्बरकी घटी बजनेपर मै डाक्टरके पास गया, तो वह पहचान ही नही पड़ा––दस बरसमे फूलकर सीकसे शहतीर हो गया है पट्ठा। मुन्नेको देखकर नुसखा लिख दिया और कहने लगा––बीमारी ज़्यादा है, एक महीना इलाज चलेगा। दवा दो और दूध-फल-मक्खन खिलाओ।

मैने मनमे सोचा––फिकर क्या है, समझ लेगे बोनस नही मिला, पर बच्चेके लिए सब कुछ करेगे। नुसखा लिये मै दवावालेकी दूकानपर गया, तो उसने एक बार नुसखा देखा और एक बार मुझे। तब बोला––"रुपये भी है जेबमे ?"

मैने कहा––"रुपये न होते तो डाक्टर रामनाथकी सूरत क्यो देखता, सरकारी अस्पताल न जाता सीधा !"

वह दवा बनाने लगा, तो मैने पूछा––कितनेकी दवा है भाई ?

बोला––पन्द्रह दिनकी दवा बाईस रुपयेकी है। सुनकर क्या बताऊं रणजीत, मै नुसखा वही छोड़कर भाग आया और बस उस दिनसे अपने ही डाक्टरका कड़वा पानी इसके गलेमे डाल रहा हूँ। सोच लिया है––डाक्टर रामनाथ हमारे लिए नही है, फिजूल भटकनेसे क्या फ़ायदा !

इंजानियरकी कोठी

मेरे नगरमें नहरके जो नये इंजीनियर आये है, वे साहित्यमें अभिरुचि रखते है, इसलिए मेरा भी उनसे मेलजोल हो गया है।

मुझे उनकी कोठीपर कभी-कभी जाना भला लगता है। बात यह है कि वह कोठी अपनेमे इतनी पूर्ण है कि देखकर आश्चर्य होता है। इंजीनियर साहबकी भोजन-मेज़पर जब भी कोई ऋतुका फल आता है, वे कहते है—यह कोठीके बाग़का ही फल है भाई साहब !

मैं जब-जब उनके यहाँ जाता हूँ, तो उनकी कोठीका पूरा एक चक्कर अवश्य लगाता हूँ। कोठी तो क़ायदे में बनी है ही, उसका बग़ीचा भी बहुत करीनेसे लगाया गया है। कहा जा सकता है कि वह पारिवारिक उपवन है—एक परिवारके लिए आवश्यक सभी चीज़ें उसमें है।

उस दिन मै वहाँके बड़े मालीसे बातें कर रहा था कि मुझे खोजते इजीनियर साहब भी आगये। उन्हें देखते ही माली बोला—"सरकार, अपने बाद आनेवालोंके लिए आप भी कोई पेड़ लगा दीजिये।"

मैंने पूछा—"अपने बाद आनेवालोंके लिए ! क्या मतलब ?"

बूढ़ा माली हँसा। तब बोला—"बाबूजी, इस कोठीका कुछ रिवाज ही ऐसा है कि यहाँ अपने करमका फल कोई नहीं भोगता !"

बात उलझ गई थी, उसे सुलझाते हुए-से मैंने पूछा—"फिर किसके कर्मोंका फल यहाँ भोगते है भाई ?"

"दूसरोंके कर्मोका फल बाबूजी !" बात सुलझ न पा रही थी। मैंने कहा—"ठीक-ठीक समझाओ मालीजी !"

बोला—"बाबूजी, जब कोठी बनी तो यह बाग़वाली ज़मीन ख़ाली पड़ी थी। बस कोठीके सामने थोड़ी-सी फुलवारी थी और कुछ नहीं।

सबसे पहले मेकडोनल साहब आये। उन्होंने इसमें दो पेड़ क़लमी आम और दो पेड़ लौकाटके लगवाये। अपने आप पानी दिया करते थे वे इनमें, पर बाबूजी, जिस साल लौकाटपर फूंगरी लगी, उनकी बदली हो गई। जाते-जाते भी वे इस लौकाटको ही देखते रहे।

उनके बाद हार्ट साहब आये। उन्होंने खूब लौकाट और आम खाये और नाख़के ये दो पेड़ लगाये, पर जिस साल नाख फला, वे विलायत चले गये। बस, यूँही नये-नये साहब आते गये और बाग़ बढ़ता गया। आज जो फालसा आपने खाया है, यह हमारी सरकारसे पहलेवाले साहब-ने लगवाये थे दो पेड़! जाने क्या बात है सरकार, कि इस कोठीमें किसी-को अपने लगाये पेड़का फल नही मिलता। पता नही ऊपरवालोंको कुछ चिढ़ है क्या कि ऐसे ही समयपर वे हमारे साहबोंकी बदली करते है।"

इंजीनियर साहब चुप थे। वे शायद सोच रहे थे कि बाग़में क्या लगाया जाये, पर तभी मेरे मनमें आया—कोठीका बाग़ ही क्या, सारे विश्वका विकास ही इस पद्धतिपर हुआ है कि हम अपने पूर्वजोंके परिश्रमका फल भोगें और आनेवालोंके लिए परिश्रम करें!

और तभी मैंने सोचा—आनेवाले हमें मानके साथ स्मरण करें या फिर गालियोके साथ, यह इस बातपर निर्भर है कि हमारा आजका निर्माण किस श्रेणीका है।

और मैं विचारोंकी धारामें बहता ही गया—हमारा वर्तमान ही नहीं हमारा भविष्य भी हमारी ही मुट्ठीमें है—जीवन ही नही, स्वर्ग भी।

दो मित्र

मै उस दिन अचानक संकटमे पड़ गया, तो मेरे दो मित्र मेरे पास आये।

एकने कहा--"यह सही है कि मेरा मस्तिष्क और हृदय अस्वस्थ है, पर मेरे हाथ-पैर खूब काम करते है। तुम चिन्ता न करो, मै तुम्हारी सहायताके लिए प्रस्तुत हूँ।"

दूसरेने कहा--"यह सही है कि मेरे हाथ-पैर अस्वस्थ है, पर मेरा मस्तिष्क और हृदय खूब काम करते है। तुम चिन्ता न करो, मै तुम्हारी सहायताके लिए प्रस्तुत हूँ।"

मैने पहलेको धन्यवाद देकर विदा कर दिया और दूसरेको अपने सकटमे साझी बनाकर निश्चिन्त हो गया।

रामनाम सत्य है !

कुछ लोग मुर्देको कन्धोंपर लिये जा रहे थे।

जो सारे जीवन घिसटकर चले, वे भी यहाँ प्रगतिशील हो जाते है।

रामनाम सत्य है।

दर्शकोंमे किसीने कहा--"बेचारा अपनी राह पूरी कर गया।"

एक साधु कहीसे आ निकले। बोले--"हाँ भाई, अपनी राह तो पूरी कर ही गया, पर हमे भी हमारी राह दिखा गया!"

मैने राह चलते योंही यह बात सुनी, तो अपनेसे कहा--'रामनाम सत्य है' विदाईका अभिनन्दन ही नही, स्वागतका निमन्त्रण भी है।

मेरा घर

नरेश मेरा विद्यालयका साथी था।

विद्यालयके बाद बरसों बीत गये, मिलनेका मौक़ा ही न लगा। काश्मीर जा रहा था कि राहमे उतर पड़ा एक दिन के लिए।

नरेशका नगर बीच ही में था!

नरेश धनी बापका बेटा। बड़ा घर, बड़ा बाग़, बड़े ठाठ। मुझे सब कुछ दिखाकर बोला—"आया पसन्द मेरा घर?"

"हाँ, बहुत बढ़िया!" खुशीसे मैंने कहा, पर तभी मुझे लगा कि मकान मुस्करा रहा है और इस मुस्कराहटमे मिठास नही, व्यंग है।

"क्यो भाई, तुम क्यों हँसे?" मैंने धीरेसे पूछा।

"यों ही तुम्हारे मित्रकी बात सुनकर हँसी आगई।" उसने कहा।

"उसमें हँसनेकी क्या बात है?"

"हँसनेकी क्या बात है? हुँ:, अरे भाई, उसमे हँसनेके सिवाय और क्या बात है? कहता है मेरा घर पसन्द आया?"

"तो फिर?"

"तो फिर क्या?—मेरा घर-मेरा घर! यही बात इसका बाप कहा करता था और यही उसका बाप! दोनों जाने अब कहाँ गये? दोनोंकी तस्वीरें ज़रूर मेरी दीवारोंपर टंगी है, जिन्हे मेरे छोटे-से छेदमें रहती हज़ारों दीमकोंमे से एक नन्ही-सी दीमक कुछ पलोंमें चाट सकती है!"

मैंने सहमे-से उसकी तरफ देखा।

वह अब भी मुस्करा रहा था, पर मैंने अनुमान किया कि मैं उसकी मुस्कराहटके बोझसे दबा-सा जा रहा हूँ!

मैं सोचता हूँ

कुछ दिनोंके बाद मै यहाँ न रहूँगा, पर इस संसारके सौन्दर्यमें कणभर भी अन्तर न पड़ेगा—यह ज्यों-का-त्यों समयकी सरिताके तट पर अठ-खेलियाँ करता रहेगा ।

काल अपने अभेद्य पाशमें इन प्राण पखेरुओं को बान्ध लेगा और यह देह ज्योतिहीन आँखकी तरह यही पड़ी रह जायगी । सगे-सम्बन्धी अग्निका आश्रय ले, इसे राखमें मिला देंगे और सम्भव है कहीं जंगल-में गीध-कौवे ही इससे अपना त्यौहार मनानेका अवसर पायें ।

आज मै कितना चिन्तित हूँ कि मुझे घरके लिए यह करना है, वह धरना है, अमुक संस्थाका निर्माण करना है, अमुकका सुधार । मुझे देशकी चिन्ता है, दुनियाकी फिक्र है ।

मै सोचता हूँ, यह सब मैं न करूँ, तो और कौन करे, पर मेरे बाद भी ये सब काम यों ही होते रहेंगे और कोई दूसरा आदमी इन सबका भार अपने सिर ले लेगा ।

युग बीतेंगे, सदियाँ गुज़रेंगी, पर कोई यह भी न पूछेगा कि वह कौन था ।

उफ़, भविष्य कितना भयंकर है !

(२)

यह संसार कुछ मेरा घर नही कि मैं यहाँ सदा-सदैव रहता रहूँ । यह एक बाज़ार है और मैं एक ख़रीदार; ख़रीदार भी ऐसा कि जिसे कुछ बेचना भी है और कुछ ख़रीदना भी । कर्मोंकी पूंजी है, पुण्योंका सौदा ।

बाज़ार बड़ा है और समय कम। सोचता हूँ कोई आवश्यक चीज़ रह न जाये। प्रातः यहाँ आया था, सन्ध्याको कालके वाहनपर चढ़, चला जाऊँगा।

लौटनेकी इस कल्पनामें कितना सुख है? अपने घरका ध्यान किस पथिकको हर्षित नहीं करता!

बाज़ारकी व्यस्ततामें कभी-कभी ऊबने भी लगता हूँ, पर तभी सोचता हूँ घर पहुँच आरामसे रहूँगा, किसी चीज़की चिन्ता न होगी। निश्चिन्त नक्षत्रोंके वातायनमें बैठा मन्द-मधुर मुस्कानमालाके साथ विश्व बाज़ारको देखा करूँगा।

वाह, भविष्य कितना आनन्दमय है!

रजकण

लक्ष्मीपुत्रने मार्गमें पड़े रजकणसे अभिमानके स्वरमें कहा—

"मै लक्ष्मीपुत्र हूँ। वैभवकी आकर्षक किरणें मेरे चारों ओर छिटका करती है, गुणीजन मेरे चारों ओर मँडराया करते है। मै अनेकोंका भाग्य विधाता और सम्मान तथा सुखका अक्षय अधिपति हूँ।"

उपेक्षाके स्वरमे रजकणने कहा—"मै रजकण हूँ। इस पथमे आने वाले सन्तों और दीवानोंका चरणचुम्बनकर अपनेको कृतार्थ किया करता हूँ। यही मेरी निधि है। हृदयके आँचलमें अपना यह सुख बटोरे मै आनन्दके राग गाता रहता हूँ।"

लक्ष्मीपुत्रने अहंकारका तीखापन कण्ठमें ले, घृणाके स्वरमें कहा—"यह सब दरिद्रीके मन समझानेकी बाते है। लोमड़ीके लिए अंगूर खट्टे होते ही है क्षुद्र!"

अपने कोमल स्वरको जरा पैनाकर रजकणने कहा—"यही पड़े-पड़े मैंने अनेक लक्ष्मीपुत्रोंको भिखारीके रूपमें जाते देखा है अभागे अभिमानी!"

दियासलाई

जली हुई दियासलाईकी एक सीक; काली-कुरूप और निरर्थक, जलते दीपकके प्रकाशमे देखा सुरुचिपूर्ण सज्जित कमरेके द्वारमें पड़ी है।

सोचा--दिया जलाकर किसीने उसे बाहर फेका होगा कि यहाँ आ गिरी। जो न हो पाया, वह मुझे करना था--मैंने उसे उठा लिया कि एक मद्धम, पर बेधती-सी कराह कानोंमें पड़ी।

"क्यो, क्या बात है ?" मैंने पूछा

"बात कुछ नही। इस भवनमे सुन्दरता और उपयोगिताके लिए ही स्थान है। कभी मुझमे भी ये गुण थे, तो मेरे लिए भी यहाँ स्थान था। अब मेरा सौन्दर्य और शक्ति मुझे बलपूर्वक घिस-रगड़कर अपहरण की जा चुकी है। इसलिए हरेककी उंगलियाँ मुझे दूरसे दूर फेंकनेको ही मचमचाती है !" तड़फकर उसने कहा।

तड़फनने मुझे करुणासे भर दिया और मैंने उसे उँगलियोंसे मुट्ठीमें लेकर कहा--"सचमुच तुम्हारे साथ बहुत अन्याय हुआ है !"

मेरी सहानुभूतिसे द्रवित हो उसने पूछा--"तुम किस लोकके शृंगार हो देव ?"

हँसकर मैंने कहा--"मै इसी लोकका एक मर्त्य मानव हूँ--क्यों ?"

"यह भी क्या मेरे लिए विश्वासकी बात हो सकती है कभी ?"--जिज्ञासाके बाद विश्वासके स्वरमे उसने कहा--"यह भावुकता तो इस व्यापारी संसारकी चीज़ नही है देव !"

"मै मातृभाषाका एक साधारण पुजारी हू। कवियोंके चरणोंमें बैठकर भावुकताका यह थोड़ा-सा प्रसाद मुझे प्राप्त हुआ है।" मैंने लाड़से कहा।

भला क्यों ?

राजेश्वर और रामेश्वर दोनों पड़ौसी।

राजेश्वर अध्यापक तो रामेश्वर वकील।

रामेश्वरने खरीद ली, एक सुन्दर-सुन्दर मोटर। वह ड्राइवरके झमेले पालता नही, खुद अपनी गाड़ी चलाता है।

एक दिन राजेश्वरकी पत्नीको दौरा पड़ गया, तो वह डाक्टरको बुलाने चला। रामेश्वरने उसे रोककर कहा--"ठहरो, गाड़ी निकालता हूँ!"

"आप क्यों कष्ट करते है, मैं तांगा लेलूगा।" राजेश्वरने नम्र होकर कहा।

"क्या पागलपनकी बातें करते हो!" रामेश्वरने लाड़से कहा और वे गाडी निकाल लाये।

× × ×

एक दिन बाहरसे राजेश्वरके कोई मित्र आये थे। वे उन्हे साथ लिये बाहर आये, तो रामेश्वर सदाकी भाँति अपने मुवक्किलोंसे जुटा था।

राजेश्वरने कहा--"भाई ज़रा गाड़ी निकालो, हम नहर जाना चाहते है। लौटते हुए तो हम घूमते चले आयेंगे!"

रामेश्वरने पैनी आँखोंसे उन्हें देखा और तब बोले--"जी, शुक्रिया; ताँगा स्टैण्ड सामने ही है!"

और वे फिर अपने काममें लग गये।

काँचका जौहरी

उसके पास पूंजीकी कमी है, पर उसका अभिमान पूंजीपतियोंसे भी बड़ा है। आज जहाँ उसकी दूकान है, वहाँ पहले खाली मैदान था। उस मैदानमें उसकी काँचकी दूकान दूरसे ही चमचमाया करती थी।

अब उस मैदानमें जौहरी बाज़ार खुल गया है। एक-एक दूकानमें इतने क़ीमती रत्न हैं कि उनकी वह क़ीमत भी नहीं आँक सकता। उसकी दूकान अब भी रंग-बिरंगी काँच-वस्तुओंसे भरी है। बड़ी मुश्किलसे वह दो-चार मामूली रत्न ला पाया है।

जौहरी जानते हैं—यह काँचवाला है। वह भी जानता है कि मैं काँचवाला हूँ, पर दावा वह हमेशा जौहरी होनेका ही करता है। जब कहीं दूकानोंकी क़ीमत खुलने लगती है, तो वह मोर्चेपर नहीं आता और अपनी जगमगाती गद्दीपर बैठे ही बैठे बड़बड़ाता रहता है—"कलके आये ये लड़के अपनेको बड़ा जौहरी समझते हैं। जब कहीं इनका पता भी न था, तबसे मेरी दूकान मशहूर है।"

यह कल्पना चर्चित प्राचीनता ही उसका अभिमान है। पूंजी और प्रतिष्ठाकी कमीके स्थानमें इसे रखकर वह तोलता है और अपनी प्राचीनताकी घोषणाका एक भी अवसर वह नहीं चूकता।

उसे मालूम है कि लोग पीछे उसकी हँसी उड़ाते हैं; इसलिए वह शक्की भी हो गया है और झक्की भी। दो आदमी कहीं बैठे कुछ भी बात क्यों न कर रहे हों, उसे अपने विरुद्ध षडयन्त्रकी रचना दिखाई दे जाती है।

कहीं किसी जौहरीकी चर्चा हो, वह ख़ुदाई फ़ौजदारकी तरह आकूदता है। कहीं जौहरियोंका ज़िक्र हो, वह उनका प्रतिनिधित्व

करनेको बेचैन रहता है। किसी न किसी बहाने और जौहरियोंको अपनी दूकानपर इकट्ठा करनेकी धुन उसे सदा सवार रहती है।

चमकको ही वह जवाहरकी सबसे बड़ी क़ीमत मानता है। उसके पास खूब चमकीले काँच हैं। जनताकी रुचिका उसे खूब पता है। जैसा गाहक हो, उसे वैसी ही चीज़ वह दिखाता है।

जौहरियोंके यहाँ गाहक कम आते हैं, रुपया अधिक। उसके यहाँ गाहक खूब आते हैं, रुपये कम। वह रुपयोंकी संख्यापर कभी बात नहीं करता। कोई उसे उस बातपर घुमा-फिराकर ले भी आता है, तो वह कन्नी काट जाता है। हाँ, गाहकोंकी संख्याके नारे वह हमेशा लगाये रहता है—"अरे भाई, क्या करें, रातके ११ बजे तक गाहक पीछा ही नहीं छोड़ते।"—"हमारे पड़ोसमें दूसरे भी तो जौहरी हैं, पर जाने क्या बात है कि गुधालका मेला इस गुलामकी ही दूकानपर जुड़ता है।"—

समझदार लोग उसकी कमज़ोरीको जानते हैं और उसपर दया करते हैं। वह इस दयाको ही प्रसशा मानता है। लोग जौहरी भी उसे कहते हैं और काँचका जौहरी भी। दोनोंमें उपहासकी पुट रहती है, पर एकसे वह फूल उठता है और दूसरेसे हो जाता है छछून्दर; जिससे उसका कुरूप चेहरा और बदरूप हो उठता है।